नमः सिद्धेभ्यः

पंचास्तिकायः

मंगलाचरण

इंदसदवंदियाणं, तिहुअणहिदमधुरविशदवक्काणं।
अंतातीदगुणाणं, णमो जिणाणं जिदभवाणं।।

सौ इंद्र जिनकी वंदना करते हैं, जिनके वचन तीन लोकके जीवोंका हित करनेवाले मधुर एवं विशद हैं, जो अनंत गुणोंके धारक हैं और जिन्होंने चतुर्गतिरूप संसारको जीत लिया है, मैं उन जिनेंद्रदेवको नमस्कार करता हूँ।।१।।

ग्रंथ करनेकी प्रतिज्ञा

समणमुहुग्गदमट्ठं, चदुग्गदिणिवारणं सणिव्वाणं।
एसो पणमिय सिरसा, समयमिमं सुणह वोच्छामि।।२।।

जो सर्वज्ञ-वीतराग देवके प्रकट हुआ है, चारों गतियोंका निवारण करनेवाला है और निर्वाणका कारण है, उस जीवादि पदार्थ समूहको अथवा अर्थ समयसारको शिरसे नमस्कार कर मैं इस पंचास्तिकायरूप समयसारको कहूँगा। हे भव्यजन! उसे तुम सुनो।।२।।

लोक और अलोकका स्वरूप

समवाओ पंचण्हं, समउत्ति जिणुत्तमेहिं पण्णत्तं।
सो चेव हवदि लोओ, तत्तो अमिओ अलोओ खं।।३।।

जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश इन पाँचोंका समुदाय है ऐसा श्रीजिनेंद्रदेवने कहा है। उक्त पाँचका समुदाय ही लोक है और उसके आगे अपरिमित आकाश अलोक है।।३।।

अस्तिकायोंकी गणना

जीवा पुग्गलकाया, धम्माधम्मा तहेव आयासं।
अत्थित्तम्हि य णियदा, अणण्णमइया [1]अणुमहंता।।४।।

---

१. अणवोऽत्र प्रदेशा मूर्तामूर्ताश्च निर्विभागांशास्त्रैर्महान्तोऽणुमहान्तः प्रदेशप्रचयात्मका इति सिद्धं तेषां कायत्वम्। अणुभ्यां महान्त इति व्युत्पत्त्या द्व्यणुकपुद्गलस्कन्धानामपि तथाविधत्वम्। अणवश्च महान्तश्च व्यक्तिशक्तिरूपाभ्यामिति परमाणूनामेकप्रदेशात्मकत्वेऽपि तत्सिद्धिः।। -- त. प्र. वृ. ।

अनंत जीव, अनंत पुद्गल, एक धर्म, एक अधर्म और एक आकाश ये पाँचों अपने सामान्य विशेष अस्तित्वमें सदा नियत हैं, द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षा उस अस्तित्वगुणसे अभिन्नरूप हैं तथा बहुप्रदेशी हैं। [अतः इन्हें अस्तिकाय कहते हैं।]।।४।।

अस्तिकायका स्वरूप

जेसिं अत्थिसहावो, गुणेहिं सह पज्जएहिं विविहेहिं।
ते होंति अत्थिकाया, णिप्पण्णं जेहिं तइलुक्कं।।५।।

जिनका स्वभाव अनेक गुण और अनेक पर्यायोंके साथ सुनिश्चित है वे अस्तिकाय कहलाते हैं। यह त्रैलोक्य उन्हीं अस्तिकायोंसे बना हुआ है।।५।।

द्रव्योंकी गणना

ते चेव अत्थिकाया, तेकालियभावपरिणदा णिच्चा।
गच्छंति दवियभावं, [१]परियट्टणलिंगसंजुत्ता।।६।।

ऊपर कहे हुए जीवादि पाँच अस्तिकाय परिवर्तनलिंग अर्थात् कालके साथ मिलकर द्रव्य व्यवहारको प्राप्त हो जाते हैं -- द्रव्य कहलाने लगते हैं। ये सभी पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षा त्रिकालवर्ती पर्यायोंमें परिणमन करनेके कारण अनित्य हैं -- उत्पाद-व्ययरूप हैं और द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षा स्वरूपमें विश्रांत होनेके कारण नित्य हैं -- ध्रौव्यरूप हैं।।६।।

एकक्षेत्रावगाहरूप होकर भी द्रव्य अपना स्वभाव नहीं छोड़ते हैं

अण्णोण्णं पविसंता, दिंता ओगासमण्णमण्णस्स।
मेलंता वि य णिच्चं, सगं सभावं ण विजहंति।।७।।

उक्त छहों द्रव्य यद्यपि परस्पर एक-दूसरेमें प्रवेश कर रहे हैं, एक दूसरेको अवकाश दे रहे हैं, और निरंतर एक दूसरेसे मिल रहे हैं, तथापि अपना स्वभाव नहीं छोड़ते।।७।।

सत्ताका स्वरूप

सत्ता सव्वपयत्था, सविस्सरूवा अणंतपज्जाया।
भंगुप्पादधुवत्ता, सप्पडिवक्खा हवदि एक्का।।८।।

सत्ता संपूर्ण पदार्थोंमें स्थित है, अनेकरूप है, अनंत पर्यायोंसे सहित है, उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य स्वरूप है, एक है तथा प्रतिपक्षी धर्मोंसे युक्त है।।८।।

---

१. 'परिवर्तनमेव जीवपुद्गलादिपरिणमनमेवाग्नेर्धूमवत् कार्यभूतं लिङ्गं चिह्नं गमकं ज्ञापकं सूचनं यस्य स भवति परिवर्तनलिङ्गः कालाणुर्द्रव्यकालस्तेन संयुक्ताः।' -- ता. वृ.।

द्रव्यका लक्षण

दवियदि गच्छदि ताइं, ताइं सब्भावपज्जयाइं जं।

दवियं तं भण्णंते, अणण्णभूदं तु सत्तादो।।९।।

जो उन गुण-पर्यायोंको प्राप्त होता है उसे द्रव्य कहते हैं, यह द्रव्य सत्तासे अभिन्न रहता है। सत्ता[1] ही द्रव्य कहलाती है।।९।।

द्रव्यका दूसरा लक्षण

दव्व[2] सल्लक्खणियं, उप्पादव्वयधुवत्तसंजुत्तं।

गुणपज्जायसयं वा, जं तं भण्णंति सव्वण्हू।।१०।।

जो सत्तारूप लक्षणसे सहित है, अथवा उत्पाद, व्यय और ध्रौव्यसे युक्त है, अथवा गुण और पर्यायोंका आश्रय है उसे सर्वज्ञदेव द्रव्य कहते हैं।।१०।।

पर्यायकी अपेक्षा उत्पाद व्यय और ध्रौव्यकी सिद्धि

उप्पत्तीव विणासो, दव्वस्स य णत्थि अत्थि सब्भावो।

विगमुप्पादधुवत्तं, करेंति तस्सेव पज्जाया।।११।।

द्रव्यका न उत्पाद होता है और न विनाश। वह सदा अस्तित्वरूप रहता है। उसकी पर्याय ही उत्पाद, व्यय तथा ध्रौव्यरूप परिणमन करती है। [द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षा द्रव्य अपरिणामी है और पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षा परिणामी है।] ।।११।।

द्रव्य और पर्यायका अभेद निरूपण

पज्जयविजुदं दव्वं, दव्वविजुत्ता य पज्जया णत्थि।

दोण्हं अणण्णभूदं, भावं समणा परूविंति।।१२।।

न द्रव्य पर्यायसे रहित होता है और न पर्यायही द्रव्यसे रहित होते हैं। महामुनि दोनोंका अभेदरूप वर्णन करते हैं।।१२।।

द्रव्य और गुणका अभेद

दव्वेण विणा ण गुणा, गुणेहिं दव्वं विणा ण संभवदि।

अव्वदिरित्तो भावो, दव्वगुणाणं हवदि तम्हा।।१३।।

द्रव्यके बिना न गुण ठहर सकते हैं और न गुणोंके बिना द्रव्य ही ठहर सकता है, अतः द्रव्य और गुणोंके बीच अव्यतिरिक्त भाव होता है -- दोनों अभिन्न रहते हैं।।१३।।

---

१. 'तत्त्वं सल्लाक्षणिकं सन्मात्रं वा यतः स्वतः सिद्धम्।' -- पंचाध्यायी।

२. 'सद्द्रव्यम्', 'उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्', 'गुणपर्ययवद् द्रव्यम्'। -- त. सू. ।

सात भंगोंका निरूपण

सिय अत्थि णत्थि उहयं, अव्वत्तव्वं पुणो य तत्तिदयं।
दव्वं खु सत्तभंगं, आदेसवसेण संभवदि।।१४।।

निश्चयसे द्रव्य, विवक्षाके वश निम्नलिखित सप्तभंगरूप होता है। जैसे -- स्यादस्ति -- किसी प्रकार है, २. स्यान्नास्ति -- किसी प्रकार नहीं है, ३. स्यादुभयम् -- किसी प्रकार अस्ति-नास्ति दोनों रूप है, ४. स्यादवक्तव्यम् -- किसी प्रकार अवक्तव्य है, ५. स्यादस्ति अवक्तव्यम् -- किसी प्रकार अस्तिरूप होकर अवक्तव्य है, ६. स्यान्नास्ति अवक्तव्यम् -- किसी प्रकार नास्तिरूप होकर अवक्तव्य है, और ७. स्यादस्ति नास्ति अवक्तव्यम् -- किसी प्रकार अस्ति-नास्ति दोनों रूप होकर अवक्तव्य है।।१४।।

गुण और पर्यायोंमें उत्पाद तथा व्ययका वर्णन

भावस्स णत्थि णासो, णत्थि अभावस्स चेव उप्पादो।
गुणपज्जयेसु भावा, उप्पादवए पकुव्वंति।।१५।।

सत् पदार्थका नाश नहीं होता और न असत् पदार्थका उत्पाद ही। पदार्थ गुण और पर्यायोंमें ही उत्पाद तथा व्यय करते हैं।।१५।।

द्रव्योंके गुण और पर्यायोंका वर्णन

भावा जीवादीया, जीवगुणा चेदणा य उवओगो।
सुरणरणारयतिरिया, जीवस्स य पज्जया बहुगा।।१६।।

जीव आदि छह पदार्थ भाव हैं, चेतना और उपयोग जीवके गुण हैं, देव मनुष्य नारकी और तिर्यंच ये जीवके अनेक पर्याय हैं।।१६।।

दृष्टांत द्वारा उत्पाद व्यय और ध्रौव्यकी सिद्धि

मणुसत्तणेण णट्ठो, देही देवो हवेदि इदरो वा।
उभयत्त जीवभावो, ण णस्सदि ण जायदे अण्णो।।१७।।

मनुष्यपर्यायसे नष्ट हुआ जीव देव अथवा अन्य पर्यायरूप हो जाता अवश्य है, परंतु जीवत्वभावका सद्भाव दोनों ही पर्यायोंमें रहता है। पूर्व जीवका न तो नाश ही होता है और न अन्य जीवका उत्पाद ही।।१७।।

सो चेव जादि मरणं, जादि ण णट्ठो ण चेव उप्पण्णो।
उप्पण्णो य विणट्ठो, देवो मणुसो त्ति पज्जाओ।।१८।।

वही जीव उपजता है जो कि मरणको प्राप्त होता है। स्वभावसे जीव न नष्ट होता है और न उपजता ही है। देव उत्पन्न हुआ और मनुष्य नष्ट हुआ, यह पर्याय ही तो उत्पन्न हुआ और पर्याय ही नष्ट

हुआ।।१८।।

सत्का विनाश और असत्की उत्पत्ति नहीं होती

एवं सदो विणासो, असदो जीवस्स णत्थि उप्पादो।
तावदिओ जीवाणं, देवो मणुसो त्ति गदिणामो।।१९।।

इस प्रकार सत् रूप जीवका न नाश होता है और न असत्रूप जीवका उत्पाद ही। जीवोंमें जो देव अथवा मनुष्यका व्यवहार होता है वह सब गति नामकर्मके उदयसे होनेवाला विकार है।।१९।।

ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्मोंके अभावसे सिद्ध पर्यायकी प्राप्ति होती है

णाणावरणादीया, भावा जीवेण सुट्ठु अणुबद्धा।
तेसिमभावं किच्चा, अभूदपुव्वो हवदि सिद्धो।।२०।।

इस संसारी जीवने अनादिकालसे ज्ञानावरणादि कर्मपर्यायोंका अतिशय बंध कर रखा है अतः उनका अभाव - क्षय करके ही यह जीव अभूतपूर्व सिद्धपर्यायको प्राप्त हो सकता है।।२०।।

भाव, अभाव, भावाभाव और अभावभावका उल्लेख

एवं भावमभावं, भावाभावं अभावभावं च।
गुणपज्जयेहिं सहिदो, संसरमाणो कुणदि जीवो।।२१।।

इस प्रकार गुण और पर्यायोंके साथ पाँच परावर्तनरूप संसारमें भ्रमण करता हुआ यह जीव कभी भावको करता है -- देवादि नवीन पर्यायको धारण करता है, कभी अभावको करता है -- मनुष्यादि पूर्व पर्यायका नाश करता है, कभी भावका अभाव करता है -- वर्तमान देवादि पर्यायका नाश करता है और कभी अभावका भाव करता है -- मनुष्यादि अभावरूप पर्यायका उत्पाद करता है।।२१।।

अस्तिकायोंके नाम

जीवा पुग्गलकाया, आयासं अत्थिकाइया सेसा।
अमया[१] अत्थित्तमया, कारणभूदा हि लोगस्स।।२२।।

जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश ये पाँच द्रव्य अस्तिस्वरूप तथा बहुप्रदेशी होनेके कारण अस्तिकाय कहलाते हैं। ये अकृत्रिम हैं, शाश्वत हैं और लोकके कारणभूत हैं।।२२।।

कालद्रव्यके अस्तित्वकी सिद्धि

सब्भावसभावाणं, जीवाणं तह य पोग्गलाणं च।
परियट्टणसंभूदो, कालो णियमेण पण्णत्तो।।२३।।

---

१. अमया अकृत्रिमा न केनापि पुरुषविशेषेण कृताः।। -- ता. वृ।

सत् अर्थात् उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यरूप स्वभावसे संयुक्त जीव और पुद्गलोंका जो परिणमन दृष्टिगोचर होता है उससे कालद्रव्यका अस्तित्व सिद्ध हो जाता है।।२३।।

काल द्रव्यका लक्षण

ववगदपणवण्णरसो, ववगददोगंधअट्ठफासो य।
अगुरुलहुगो अमुत्तो, वट्टणलक्खो य कालो त्ति।।२४।।

काल द्रव्य पाँच वर्ण, पाँच रस, दो गंध और आठ स्पर्शोंसे रहित है, षड्गुणी हानि वृद्धिरूप अगुरुलघु गुणसे युक्त है, अमूर्तिक है और वर्तनालक्षणसे सहित है।।२४।।

व्यवहारकालका वर्णन

समओ णिमिसो कट्ठा, कला य णाली तदो दिवारत्ती।
मासो दु अयण संवच्छरो त्ति कालो परायत्तो।।२५।।

समय, निमेष, काष्ठा, कला, नाड़ी, दिन-रात, मास, ऋतु, अयन और वर्ष यह सब व्यवहारकाल है। चूँकि यह व्यवहारकाल सूर्योदय, सूर्यास्त आदि पर पदार्थोंके निमित्तसे अनुभवमें आता है अतः पराधीन है।।२५।।

पुद्गलद्रव्यके निमित्तसे व्यवहारकालकी उत्पत्तिका वर्णन

णत्थि चिरं वा खिप्पं, मत्तारहिदं तु सा वि खलु मत्ता।
पुग्गलदव्वेण विणा, तम्हा कालो दु पडुच्चभवो।।२६।।

कालकी मात्रा -- मर्यादाके बिना विलंब और शीघ्रताका व्यवहार नहीं हो सकता, अतः उसका वर्णन अवश्य करना चाहिए और चूँकि कालकी मात्रा पुद्गल द्रव्यके बिना प्रकट नहीं हो सकती इसलिए उसे पुद्गल द्रव्यके निमित्तसे उत्पन्न हुआ माना जाता है।।२६।।

इस प्रकार श्री कुंदकुंददेव द्वारा विरचित पंचास्तिकाय ग्रंथमें षड्द्रव्य और पंचास्तिकायके सामान्य स्वरूपको कहनेवाला 'पीठबंध' समाप्त हुआ।

***

जीवका स्वरूप

जीवोत्ति हवदि चेदा, उपओगविसेसिदो पहू कत्ता।
भोत्ता य देहमत्तो, ण हि मुत्तो कम्मसंजुत्तो।।२७।।

जो निश्चयनयकी अपेक्षा भावप्राणोंसे और व्यवहारनयकी अपेक्षा द्रव्यप्राणोंसे जीवित रहता है वह जीव कहलाता है। यह जीव निश्चय नयकी अपेक्षा चेतनामय है और व्यवहार नयकी अपेक्षा

चेतनागुणसंयुक्त है। निश्चयनयकी अपेक्षा केवलज्ञान, केवलदर्शनरूप उपयोगसे और अशुद्ध निश्चयनयकी अपेक्षा मतिज्ञान आदि क्षायोपशमिक उपयोगसे विशिष्ट है। निश्चयकी अपेक्षा मोक्ष और मोक्षके कारणरूप शुद्ध परिणामोंके परिणमनमें समर्थ होनेसे तथा अशुद्ध नयकी अपेक्षा संसार और उसके कारणस्वरूप अशुद्ध परिणामोंके परिणमनमें समर्थ होनेसे प्रभु है। शुद्ध निश्चय नयसे शुद्ध भावोंका, अशुद्ध निश्चय नयसे रागादि भावोंका और व्यवहार नयसे द्रव्य कर्मोंका कर्ता होनेके कारण कर्ता है। शुद्ध निश्चय नयसे शुद्धात्मदशामें उत्पन्न होनेवाले वीतराग परमानंदरूप सुखका, अशुद्ध निश्चय नयसे कर्मजनित सुख-दुःखादिका और अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नयसे सुख-दुःखके साधक इष्ट-अनिष्ट विषयोंका भोगनेवाला होनेके कारण भोक्ता है। निश्चय नयसे लोकाकाशके बराबर असंख्यातप्रदेशी होनेपर भी व्यवहार नयसे नामकर्मोदयजनित शरीरके बराबर रहनेसे स्वदेहमात्र है, मूर्तिसे रहित है और कर्मसंयुक्त है। यह संसारी जीवका स्वरूप है।।२७।।

मुक्त जीवका स्वरूप

कम्ममलविप्पमुक्को, उड्ढं लोगस्स अंतमधिगंता।
सो सव्वणाणदरिसी, लहदि सुहमणिंदियमणंतं।।२८।।

यह जीव कर्ममलसे विप्रमुक्त होता है तब सर्वज्ञ और सर्वदर्शी होकर ऊर्ध्वगति स्वभावके कारण लोकके अंतिम भाग -- सिद्धक्षेत्रमें जा पहुँचता है और वहाँ अनंत अतींद्रिय सुख प्राप्त करने लगता है।।२८।।

मुक्त जीवकी विशेषता

जादो य सयं चेदा, सव्वण्हू सव्वलोगदरसी य।
पप्पोदि सुहमणंतं, अव्वाबाधं सगममुत्तं।।२९।।

जो आत्मा पहले संसार अवस्थामें इंद्रियजनित बाधा सहित पराधीन और मूर्तिक सुखका अनुभव करता था अब वही चिदात्मा मुक्त अवस्थामें सर्वज्ञ और सर्वदर्शी होकर अनंत, अव्याबाध, स्वाधीन और अमूर्तिक सुखका अनुभव करता है।।२९।।

जीव शब्दकी निरुक्ति

पाणेहिं चदुहिं जीवदि, जीवस्सदि जो हु जीविदो पुव्वं।
सो जीवो पाणा पुण, बलमिंदियमाउ उस्सासो।।३०।।

जो चार प्राणोंके द्वारा वर्तमानमें जीवित है, आगे जीवित होगा और पहले जीवित था वह जीव है। जीवके चार प्राण हैं -- बल, इंद्रिय, आयु और उच्छ्वास।।३०।।

जीवकी विशेषता

अगुरुलहुगा अणंता, तेहिं अणंतेहिं परिणदा सव्वे।
देसेहिं असंखादा, सियलोगं सव्वमावण्णा।।३१।।
केचित्तु अणावण्णा, मिच्छादंसणकसायजोगजुदा।
विजुदा य तेहिं बहुगा, सिद्धा संसारिणो जीवा।।३२।। (जुम्मं)

अगुरुलघुगुण अनंत हैं, समस्त जीव उन अनंत अगुरुलघुगुणोंके कारण परिणमन करते रहते हैं, सभी जीव, प्रदेशोंकी अपेक्षा असंख्यात हैं-- असंख्यात प्रदेशोंके धारक हैं। उनमेंसे कितने ही जीव लोकपूर्ण समुद्घातके समय संपूर्ण लोकमें व्याप्त होते हैं और कितने ही अपने शरीरके प्रमाण अवस्थित रहते हैं, कितने ही मिथ्यादर्शन, कषाय और योगोंसे युक्त होनेके कारण संसारी हैं और कितने ही उनसे रहित होकर सिद्ध हुए हैं।।३१-३२।।

जीव शरीरप्रमाण है

जह पउमरायरयणं, खित्तं खीरे पभासयदि खीरं।
तह देही देहत्थो, सदेहमत्तं पभासयदि।।३३।।

जिस प्रकार दूधमें पड़ा हुआ पद्मरागमणि समस्त दूधको व्याप्त कर लेता है, उसी प्रकार शरीरमें स्थित आत्मा समस्त शरीरको व्याप्त कर लेता है। [यहाँ पद्मराग शब्दसे पद्मरागकी प्रभा ली जाती है, न कि रत्न। जिस प्रकार दूधमें पड़े हुए पद्मराग रत्नकी प्रभाका समूह समस्त दूधको व्याप्त कर लेता है उसी प्रकार यह जीव भी जिस शरीरमें स्थित रहता है उसे सब ओरसे व्याप्त कर लेता है। अथवा जिस प्रकार विशिष्ट अग्निके संयोगसे दूध बढ़नेपर पद्मरागरत्नकी प्रभाका समूह बढ़ने लगता है और घटनेपर घटने लगता है उसी प्रकार यह जीव भी पौष्टिक आहारादिके निमित्तसे शरीरके बढ़नेपर बढ़ने लगता है और दुर्बलता आदि के समय शरीरके घटनेपर घटने लगता है। अथवा जिस प्रकार वही रत्न उस दूधसे निकालकर किसी दूसरे छोटे बड़े बर्तनमें रखे हुए अल्प अथवा बहुत दूधमें डाल दिया जाता है तब वह उसे भी व्याप्त कर लेता है। इसी प्रकार यह जीव जब एक शरीरसे निकलकर नामकर्मोदयसे प्राप्त हुए किसी दूसरे छोटे-बड़े शरीरमें पहुँचता है तब उसे भी व्याप्त कर लेता है।]।।३३।।

द्रव्यकी अपेक्षा जीव द्रव्य अपने समस्त पर्यायोंमें रहता है

सव्वत्थ अत्थि जीवो, ण य एक्को एक्ककाय एक्कट्ठो।
अज्झवसाणविसिट्ठो, चिट्ठदि मलिणो रजमलेहिं।।३४।।

यह जीव त्रिकालवर्ती समस्त पर्यायोंमें विद्यमान रहता है-- नवीन पर्यायका उत्पाद होनेपर भी नवीन जीवका उत्पाद नहीं होता। यद्यपि यह जीव एक शरीरमें क्षीर-नीरकी तरह परस्पर मिलकर रहता है

तथापि उस शरीरसे एकरूप नहीं होता -- अपना अस्तित्व पृथक् रखता है। यह जीव रागादि भावोंसे युक्त होनेके कारण द्रव्यकर्मरूपी मलसे मलिन हो जाता है और इसी कारण इसे एक शरीरसे दूसरे शरीरमें संचार करना पड़ता है।।३४।।

सिद्ध जीवका स्वरूप

जेसिं जीवसहावो, णत्थि अभावो य सव्वहा तस्स।
ते होंति भिण्णदेहा, सिद्धा वचिगोयरमदीदा।।३५।।

जिनके कर्मजनित द्रव्यप्राणरूप जीव स्वभावका सद्भाव नहीं है और शुद्ध चैतन्यरूप भाव प्राणोंसे युक्त होनेके कारण सर्वथा उसका अभाव भी नहीं है, जो शरीरसे रहित हैं और जिनकी महिमा वचनके अगोचर है वे सिद्ध जीव हैं।।३५।।

सिद्ध जीव कार्यकारण व्यवहारसे रहित हैं

ण कुदोचि वि उप्पण्णो, जम्हा कज्जं ण तेण सो सिद्धो।
उप्पादेदि ण किंचि वि, कारणमवि तेण ण स होदि।।३६।।

चूँकि सिद्ध जब किसी बाह्य कारणसे उत्पन्न नहीं हुए हैं अतः वे कार्य नहीं हैं और न किसी कार्यको वे उत्पन्न ही करते हैं अतः कारण भी नहीं हैं।।३६।।

मोक्षमें जीवका असद्भाव नहीं है

सस्सधमध उच्छेदं, भव्वमभव्वं च सुण्णमिदरं च।
विण्णाणमविण्णाणं, ण वि जुज्जदि असदि सब्भावे।।३७।।

यदि मोक्षमें जीवका सद्भाव नहीं माना जाय तो उसमें निम्नलिखित आठ भाव संभव नहीं हो सकेंगे। १. शाश्वत, २. उच्छेद, ३. भव्य, ४. अभव्य, ५. शून्य, ६. अशून्य, ७. विज्ञान और ८. अविज्ञान। इनका विवरण इस प्रकार है -- (१) द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षा जीव द्रव्यका सदा ध्रौव्य रहना शाश्वतभाव है। (२) पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षा अगुरुलघु गुणके द्वारा प्रतिसमय षड्गुणी हानि-वृद्धिरूप परिणमन होना उच्छेदभाव है। (३) निर्विकार चिदानंद स्वभावसे परिणमन करना भव्यत्व भाव है। (४) मिथ्यात्व रागादि विभाव परिणामरूप नहीं होना अभव्यत्व भाव है। (५) स्वशुद्धात्मद्रव्यसे विलक्षण पर द्रव्य क्षेत्र काल भावरूप चतुष्टयका अभाव होना शून्यभाव है। (६) स्व द्रव्य क्षेत्र काल भावरूप चतुष्टयका सद्भाव रहना अशून्यभाव है। (७) समस्त द्रव्य गुण पर्यायोंको एक साथ प्रकाशित करनेमें समर्थ निर्मल केवलज्ञानसे युक्त होना विज्ञानभाव है और (८) मतिज्ञानादि क्षायोपशमिक ज्ञानोंसे रहित होना अविज्ञान भाव है। उक्त आठ भावोंका सद्भाव तभी संभव हो सकता है जबकि आत्माका सद्भाव माना जाय। सिद्ध जीवके शाश्वत आदि सभी भाव संभव हैं अतः सौगतोंने मोक्ष अवस्थामें भी जीवका जो अभाव

माना है वह मिथ्या है।।३७।।

त्रिविध चेतनाकी अपेक्षा जीवके तीन भेद

कम्माणं फलमेक्को, एक्को कज्जं तु णाणमध एक्को।
चेदयदि जीवरासी, चेदगभावेण तिविहेण।।३८।।

कुछ जीव प्रच्छन्नसामर्थ्य होनेके कारण केवल कर्मफलका अनुभव करते हैं, कुछ सामर्थ्य प्रकट होनेके कारण इष्टानिष्ट विकल्परूप कर्मका अनुभव करते हैं और कुछ विशुद्ध ज्ञानका ही अनुभव करते हैं। इस प्रकार जीवराशि तीन प्रकारके चेतक भावसे पदार्थका अनुभव करती है। चेतना के तीन भेद हैं -- १. कर्मफल चेतना, २. कर्मचेतना और ३. ज्ञानचेतना।।३८।।

कर्म, कर्मफल और ज्ञानचेतना के स्वामी

सव्वे खलु कम्मफलं, थावरकाया तसा हि कज्जजुदं।
पाणित्तमदिक्कंता, णाणं विंदंति ते जीवा।।३९।।

सब स्थावर जीव कर्मफलका अनुभव करते हैं, त्रसजीव इष्टानिष्ट पदार्थोंमें आदान हानरूप कर्म करते हुए कर्मका उपभोग करते हैं और प्राणिपनेके व्यवहारसे परे रहनेवाले अतींद्रिय ज्ञानी अरहंतसिद्ध ज्ञानमात्रका वेदन करते हैं।।३९।।

उपयोगके दो रूप

उवओगो खलु दुविधो, णाणेण य दंसणेण संजुत्तो।
जीवस्स सव्वकालं, अणण्णभूदं वियाणीहि।।४०।।

ज्ञान और दर्शनसे युक्त होनेके कारण उपयोग दो प्रकारका होता है, यह उपयोग सदा काल जीवसे अनन्यभूत - अभिन्न रहता है। आत्माके चैतन्यगुणके परिणमनको उपयोग कहते हैं, उसके दो भेद हैं -- १. ज्ञानोपयोग और २. दर्शनोपयोग।।४०।।

ज्ञानोपयोगके आठ भेद

आभिणिसुदोधिमणकेवलाणि णाणाणि पंचभेयाणि।
कुमदिसुदविभंगाणि य, तिण्णि वि णाणेहिं संजुत्ते।।४१।।

मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान ये पाँच सम्यग्ज्ञान तथा कुमति, कुश्रुत और विभंगावधि ये तीन मिथ्याज्ञान सब मिलाकर ज्ञानोपयोगके आठ भेद हैं।।४१।।

दर्शनोपयोगके चार भेद

दंसणमवि चक्खुजुदं, अचक्खुजुदमवि य ओहिणा सहियं।
अणिधणमणंतविसयं, केवलियं चावि पण्णत्तं।।४२।।

चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और अंतरहित तथा अनंत पदार्थोंको विषय करनेवाला केवलदर्शन ये चार दर्शनोपयोगके भेद हैं।।४२।।

जीव और ज्ञानमें अभिन्नता

ण वियप्पदि णाणादो, णाणी णाणाणि होंति णेगाणि।
तम्हा दु विस्सरूवं, भणियं दवियत्ति णाणीहि।।४३।।

चूँकि ज्ञानी ज्ञानगुणसे पृथक् नहीं है और ज्ञान मति आदिके भेदसे अनेकरूप है, इसलिए ज्ञानी-महर्षियोंने जीवद्रव्यको अनेकरूप कहा है।।४३।।

गुण और गुणीमें अभेद

जदि हवदि दव्वमण्णं, गुणदो य गुणा य दव्वदो अण्णे।
दव्वाणंतियमधवा, दव्वाभावं पकुव्वंति।।४४।।

यदि द्रव्य, गुणसे पृथक् हो और गुण भी द्रव्यसे पृथक् हो तो या तो द्रव्यमें अनंतता आ जावेगी या द्रव्यसे पृथक् रहनेवाले गुण द्रव्यका अभाव ही कर देंगे।।४४।।

द्रव्य और गुणोंमें अभेद तथा भेदका निरूपण

अविभत्तमणण्णत्तं, दव्वगुणाणं विभत्तमणणत्तं।
णिच्छंति णिच्चयण्हू, तव्विवरीदं हि वा तेसिं।।४५।।

द्रव्य और गुणोंमें जो अनन्यत्व - एकरूपता है वह प्रदेशभेदसे रहित है। निश्चयके जाननेवाले महर्षि द्रव्य और गुणोंके बीच प्रदेश भेदरूप अन्यत्वको नहीं मानते हैं - द्रव्य और गुणोंमें प्रदेशभेद न होनेसे अभेद है और संज्ञा संख्या प्रयोजन आदिकी विभिन्नता होनेसे भेद है। निश्चयज्ञ पुरुष इनके भेद और अभेदको उक्त प्रकारसे विपरीत नहीं मानते हैं।।४५।।

ववदेसा संठाणा, संखा विसया य होंति ते बहुगा।
ते तेसिमणण्णत्ते, अण्णत्ते चावि विज्जंते।।४६।।

उन द्रव्य और गुणोंके व्यपदेश - कथनके भेद, आकार, संख्या एवं विषय बहुत प्रकारके होते हैं और वे द्रव्य तथा गुणोंकेअभेद और भेद दोनों प्रकारकी दशाओंमें विद्यमान रहते हैं।।४६।।

पृथक्त्व और एकत्वका वर्णन

णाणं धणं च कुव्वदि, धणिणं जह णाणिणं च दुविधेहिं।
भण्णंति तह पुधत्तं, एयत्तं चावि तच्चण्हू।।४७।।

जैसे धन पुरुषको धनवान करता है और ज्ञान ज्ञानी। यहाँ धन जुदा है और पुरुष जुदा है। परंतु धनके संबंधसे पुरुष धनवान नाम पाता है और ज्ञान तथा ज्ञानी दोनोंमें यद्यपि प्रदेशभेद नहीं है तथापि

गुणगुणीके व्यवहारकी अपेक्षा ज्ञानगुणके द्वारा पुरुष ज्ञानी नाम पाता है। वैसे ही इन दो प्रकारके भेदाभेद कथनके द्वारा वस्तुस्वरूपको जाननेवाले पुरुष पृथक्त्व और एकत्वका निरूपण करते हैं। जहाँ प्रदेशभेद होता है वहाँ पृथक्त्व व्यवहार होता है और जहाँ उसका अभाव होता है वहाँ एकत्व व्यवहार होता है।।४७।।

ज्ञान और ज्ञानीमें सर्वथा भेदका निषेध

णाणी णाणं च सदा, अत्थंतरिदो दु अण्णमण्णस्स।
दोण्हं अवेदणत्तं, पसजदि सम्मं जिणावमदं।।४८।।

ज्ञान और ज्ञानी दोनोंका सदा अर्थांतर -सर्वथा विभिन्न माननेपर दोनोंमें जड़ताका प्रसंग आता है और वह जड़ता यथार्थमें श्री जिनेंद्रदेवको अभिमत नहीं है। जिस प्रकार उष्ण गुणवान् अग्निसे यदि उष्णगुणको सर्वथा जुदा माना जावे तो अग्नि शीतल होकर दाहक्रियाके प्रति असमर्थ हो जावे इसीप्रकार जीवसे यदि ज्ञानगुणको सर्वथा जुदा माना जावे तो जीव जड़ होकर पदार्थोंके जाननेमें असमर्थ हो जावे। पर ऐसा देखा नहीं जाता। यहाँ कोई यह कह सकता है कि जिसप्रकार देवदत्त अपने शरीरसे भिन्न रहनेवाले दात्र (हंसिया) के द्वारा तृणादिका छेदक हो जाता है उसीप्रकार जीव भी भिन्न रहनेवाले ज्ञानके द्वारा पदार्थोंका ज्ञायक हो सकता है। पर उसका ऐसा कहना ठीक नहीं है, क्योंकि छेदनक्रियाके प्रति दात्र बाह्य उपकरण है और वीर्यांतराय कर्मके क्षयोपशमसे उत्पन्न हुई पुरुषकी शक्तिविशेष आभ्यंतर उपकरण है। इस आभ्यंतर उपकरणके अभावमें दात्र तथा हस्तव्यापार आदि बाह्य उपकरणके रहनेपर भी जिसप्रकार छेदनक्रिया नहीं हो सकती उसीप्रकार बाह्य उपकरणके रहनेपर भी ज्ञानरूप आभ्यंतर उपकरणके अभावमें जीव पदार्थोंका ज्ञाता नहीं हो सकता। सार यह है कि बाह्य उपकरण यद्यपि कर्तासे भिन्न है तथापि आभ्यंतर उपकरण उससे अभिन्न ही रहता है। यदि कोई यह कहे कि ज्ञान और ज्ञानी यद्यपि जुदे-जुदे हैं तथापि संयोगसे जीवमें चेतना आ जावेगी तो यह कहना ठीक नहीं मालूम होता, क्योंकि ज्ञानगुणरूप विशेषतासे रहित जीव और जीवसे भिन्न रहनेवाला निराश्रय ज्ञान, दोनों ही शून्यरूप सिद्ध होते हैं - दोनोंका अस्तित्व नहीं है।।४८।।

ज्ञानके समवायसे आत्मा ज्ञानी होता है इस मान्यता का निषेध

ण हि सो समवायादो, अत्थंतरिदो दु णाणदो णाणी।
अण्णाणीति य वयणं, एगत्तप्पसाधगं होदि।।४९।।

जब कि ज्ञानी - आत्मा ज्ञानसे सर्वथा विभिन्न है तब वह उसके समवायसे भी ज्ञानी नहीं हो सकता, क्योंकि यहाँ यह प्रश्न उपस्थित होता है कि ज्ञानके साथ समवाय होनेके पहले आत्मा ज्ञानी था या अज्ञानी? यदि ज्ञानी था तो ज्ञानका समवाय मानना किसलिए? यदि अज्ञानी था तो अज्ञानी होनेका कारण

क्या है? क्या अज्ञानके साथ उसका समवाय है? या एकत्व? समवाय तो हो नहीं सकता, क्योंकि अज्ञानीका अज्ञानके साथ समवाय मानना निष्फल है, अतः अगत्या 'आत्मा अज्ञानी है'[१] ऐसा कथन अज्ञानके साथ उसका एकत्व सिद्ध कर देता है और इस प्रकार अज्ञानके साथ एकत्व सिद्ध होनेपर ज्ञानके साथ भी उसका एकत्व अवश्य सिद्ध हो जाता है।।४९।।

द्रव्य और गुणोंमें अयुतसिद्धिका वर्णन

समवत्ती समवाओ, अपुधब्भूदो य अजुदसिद्धो य।
तम्हा दव्वगुणाणं, अजुदा सिद्धित्ति णिद्दिट्ठा।।५०।।

गुण और गुणीके बीच अनादि कालसे जो समवर्तित्व - तादात्म्य संबंध पाया जाता है वही जैनमतमें समवाय कहलाता है। चूँकि समवाय ही अपृथग्भूतत्व और अयुतसिद्धत्व कहलाता है इसलिए द्रव्य और गुण अथवा गुण और गुणीमें अयुतसिद्धि होती है। उनमें पृथक् प्रदेशत्व नहीं होता। ऐसा श्री जिनेंद्रदेवने निर्देश किया है।

दृष्टांतद्वारा ज्ञान-दर्शनगुण और जीवमें अभेद तथा भेदका कथन

वण्णरसगंधफासा, परमाणुपरूविदा विसेसा हि।
दव्वादो य अणण्णा, अण्णत्तपगासगा होंति।।५१।।
दंसणणाणाणि तहा, जीवणिबद्धाणि णण्णभूदाणि।
ववदेसदो पुधत्तं, कुव्वंति हि णो सभावादो।।५२।।

जिसप्रकार परमाणु में कहे गये वर्ण रस गंध स्पर्शरूप विशेष गुण परमाणुरूप पुद्गलद्रव्यसे अभिन्न और भिन्न दोनों रूप हैं - निश्चयकी अपेक्षा प्रदेशभेद न होनेसे एक हैं और व्यवहारकी अपेक्षा संज्ञा, संख्या, लक्षण आदिमें भेद होनेसे अनेक हैं - पृथक् हैं उसीप्रकार जीवके साथ समवाय संबंधसे निबद्ध होकर रहनेवाले ज्ञान और दर्शन अभिन्न और भिन्न दोनों रूप हैं। निश्चयकी अपेक्षा प्रदेशभेद न होनेसे एक हैं और व्यवहारकी अपेक्षा संज्ञा, संख्या, लक्षण आदिमें भेद होनेसे अनेक हैं -- पृथक् हैं।।५१-५२।।

जीवकी अनादि-निधनता तथा सादि-सांतता आदिका कथन

जीवा अणाइणिहणा, संता णंता[१] य जीव[२]भावादो।
सब्भावदो अणंता[३], पंचग्गगुणप्पधाणा य।।५३।।

१. साद्यनन्ताः। २. जीवभावतः क्षायिको भावस्तस्मात्।

३. अनन्ता विनाशरहिताः अथवा द्रव्यस्वभावगणनया पुनरनन्ताः। सान्तानन्तशब्दयोर्द्वितीयव्याख्यानं क्रियते -- सहान्तेन संसारविनाशेन वर्तन्ते सान्ता भव्याः, न विद्यन्तेऽन्तः संसार विनाशो येषां ते पुनरनन्ता अभव्याः, ते चाभव्या अनन्तसंख्यास्तेभ्योऽपि भव्या अनन्तगुणसंख्यास्तेभ्योऽप्यभव्यसमानभव्या अनन्तगुणा इति।। -- ज. वृ.

जीव, सहज चैतन्यलक्षण पारिणामिकभावकी अपेक्षा अनादि-निधन है। औदयिक, क्षायोपशमिक और औपशमिक भावकी अपेक्षा सादि सांत हैं। क्षायिकभावकी अपेक्षा सादि अनंत हैं। सत्ता स्वरूपकी अपेक्षा अनंत हैं, विनाशरहित हैं अथवा द्रव्यसंख्याकी अपेक्षा अनंत हैं और व्यवहारकी अपेक्षा औदयिक औपशमिक क्षायिक क्षायोपशमिक तथा पारिणामिक इन पाँचों भावोंकी प्रधानता लिये हुए प्रवर्तमान हैं।।५३।।

विवक्षावशसे सत्के विनाश और असत्के उत्पादनका कथन

एवं सदो विणासो, असदो जीवस्स होइ उप्पादो।
इदि जिणवरेहिं भणिदं, अण्णोण्णविरुद्धमविरुद्धं।।५४।।

इसप्रकार विवक्षावश विद्यमान जीवका विनाश होता है और अविद्यमान जीवका उत्पाद भी। जिनेंद्रदेवका यह कथन परस्परमें विरुद्ध होनेपर भी नयविवक्षासे अविरुद्ध है।

'मनुष्य मरकर देव हुआ' यहाँ मनुष्यपर्यायसे उपलक्षित जीवद्रव्यका नाश हुआ और देव पर्यायसे अनुपलक्षित जीवद्रव्यका उत्पाद हुआ। द्रव्यार्थिक नयसे यह सिद्धांत ठीक है कि 'नैवासतो जन्म सतो न नाशः' अर्थात् असत्का जन्म और सत्का नाश नहीं होता, परंतु पर्यायार्थिक नयसे विद्यमान पर्यायका नाश और अविद्यमान पर्यायका उत्पाद होता ही है, क्योंकि क्रमवर्ती होनेसे एक कालमें दो पर्याय विद्यमान नहीं रह सकते। इसलिए पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षा जिनेंद्रदेवका गाथोक्त कथन अविरुद्ध है।।५४।।

सत्के विनाश और असत्के उत्पाद का कारण

णेरइयतिरियमणुआ, देवा इदि णामसंजुदा पयडी।
कुव्वंति सदो णासं, असदो भावस्स उप्पादं।।५५।।

नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव इन नामोंसे युक्त कर्मप्रकृतियाँ विद्यमान पर्यायका नाश करती हैं और अविद्यमान पर्यायका उत्पाद करती हैं।।५५।।

जीवके औपशमिक आदि भावोंका वर्णन

उदयेण उवसमेण य, खयेण दुहिं मिस्सिदेहिं परिणामे।
जुत्ता ते जीवगुणा, बहुसु य अत्थेसु विच्छिण्णा।।५६।।

जीवके जो भाव कर्मोंके उदय, उपशम, क्षय और क्षयोपशमसे तथा आत्मीय निज परिणामोंसे युक्त हैं वे उसके क्रमशः औदयिक, औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक और पारिणामिक नामसे प्रसिद्ध पाँच सामान्य गुण हैं। ये पाँचों ही गुण -- भाव उपाधिभेदसे अनेक अर्थोंमें विस्तृत हैं -- अनेक भेदयुक्त हैं अथवा "[1]बहुसुदअत्थेसु वित्थिण्णा' पाठमें बहुज्ञानियोंके शास्त्रोंमें विस्तारके साथ वर्णित हैं।।५६।।

---

१. बहुसुदअत्थेसु वित्थिण्णा -- बहुश्रुतशास्त्रेषु तत्त्वार्थादिषु विस्तीर्णाः।। -- ज. वृ.

विवक्षावश औदयिक भावोंका कर्ता जीव है

कम्मं वेदयमाणो, जीवो भावं करेदि जारिसयं।
सो तेण तस्स कत्ता, हवदित्ति य सासणे पढिदं।।५७।।

उदयागत द्रव्यकर्मका वेदन करनेवाला जीव जैसा भाव करता है वह उसका कर्ता होता है ऐसा जिनशासनमें कहा गया है।।५७।।

औदयिक आदि भाव द्रव्यकर्मकृत हैं

कम्मेण विणा उदयं, जीवस्स ण विज्झदे उवसमं वा।
खइयं खओवसमियं, तम्हा भावं तु कम्मकदं।।५८।।

यतः द्रव्यकर्मके बिना आत्माके रागादि विभावोंका उदय और उपशम नहीं हो सकता तथा क्षायिक और क्षायोपशमिक भाव भी नहीं हो सकते अतः जीवके उल्लिखित चारों भाव द्रव्यकर्मके किये हुए हैं।।५८।।

प्रश्न

भावो जदि कम्मकदो, अत्ता कम्मस्स होदि किध कत्ता।
ण कुणदि अत्ता किंचिवि, मुत्ता अण्णं सगं भावं।।५९।।

यदि औदयिक आदि भाव द्रव्यकर्मके द्वारा किये हुए हैं तो आत्मा द्रव्यकर्मका कर्ता कैसे हो सकता है? क्योंकि वह निजभावको छोड़कर अन्य किसीका कर्ता नहीं है। यदि सर्वथा द्रव्यकर्मको औदयिक आदि भावोंका कर्ता माना जाय तो आत्मा अकर्ता हो जायगा और ऐसी दशामें संसारका अभाव हो जायेगा। यदि यह कहा जाय कि आत्मा द्रव्यकर्मका कर्ता है अतः संसारका अभाव नहीं होगा तो द्रव्यकर्मको जो कि पुद्गलका परिणाम है आत्मा कैसे कर सकता है? और उस हालतमें, जबकि आत्मा निज स्वभावको छोड़कर अन्य किसीका कर्ता नहीं है।।५९।।

उत्तर

भावो कम्मणिमित्तो, कम्मं पुण भावकारणं हवदि।
ण दु तेसिं खलु कत्ता, ण विणा भूदा दु कत्तारं।।६०।।

व्यवहार नयसे जीवके औदियिक आदि भावोंका कर्ता द्रव्य कर्म है और द्रव्यकर्मका कर्ता भावकर्म है परंतु निश्चय नयसे द्रव्यकर्म औदयिक आदि भावोंका कर्ता नहीं है और न औदयिक आदि भावकर्म द्रव्यकर्मका कर्ता है। इसके सिवाय वे दोनों -- द्रव्यकर्म भावकर्म कर्ताके बिना भी नहीं होते हैं।

कारणके दो भेद हैं -- उपादान और निमित्त। भावकर्मका उपादान कारण आत्मा है और निमित्त कारण द्रव्यकर्म। इसी प्रकार द्रव्यकर्मका उपादान कारण पुद्गल द्रव्य है और निमित्त कारण औदयिक

आदि भावकर्म।।६०।।

आत्मा निजभावका कर्ता है परभावका नहीं

कुव्वं सगं सहावं, अत्ता कत्ता सगस्स भावस्स।
ण हि पोग्गलकम्माणं, इदि जिणवयणं मुणेयव्वं।।६१।।

'अपने निजभावको करता हुआ आत्मा निजभावका ही कर्ता है, पुद्‌गलरूप द्रव्यकर्मोंका कर्ता नहीं है' ऐसा जिनेंद्रदेवका वचन जानना चाहिए।।६१।।

कम्मं पि सगं कुव्वदि, सेण सहावेण सम्ममप्पाणं।
जीवो वि य तारिसओ, कम्मसहावेण भावेण।।६२।।

जिस प्रकार कर्म स्वकीय स्वभाव द्वारा यथार्थमें अपने आपको करता है उसी प्रकार जीवद्रव्य भी स्वकीय अशुद्ध स्वभाव -- रागादि परिणाम द्वारा अपने आपको करता है। निश्चय नयसे कर्मका कर्ता कर्म है और जीवका कर्ता जीव है। जीव पुद्‌गल द्रव्यमें होनेवाले कर्मरूप परिणमनका कर्ता है और कर्म, जीवद्रव्यमें होनेवाले नर नारकादि परिणमनका कर्ता है' यह सब औपचारिक कथन है।।६२।।[१]

प्रश्न

कम्मं कम्मं कुव्वदि, जदि सो अप्पा करेदि अप्पाणं।
किध तस्स फलं भुंजदि, अप्पा कम्मं च देदि फलं।।६३।।

यदि कर्म कर्मका कर्ता है और आत्मा आत्माका कर्ता है तो आत्मा कर्मके फलको किस प्रकार भोगता है? और कर्म भी आत्माको किस प्रकार फल देता है?।।६३।।

उत्तर

मोगाढगाढणिचिदो, पोग्गलकायेहिं सव्वदो लोगो।
सुहुमेहिं बादरेहिं, णंताणंतेहिं विविहेहिं।।६४।।
अत्ता कुणदि सहावं, तत्थ गदा पोग्गला सहावेहिं।
गच्छंति कम्मभावं, अण्णोण्णागाहमवगाढा।।६५।।
जह पुग्गलदव्वाणं, बहुप्पयारेहिं खंधणिव्वत्ती।
अकदा परेहिं दिट्ठा, तह कम्माणं वियाणाहि।।६६।।

---

१. जीवकृतं परिणामं निमित्तमात्रं प्रपद्य पुनरन्ये।
स्वयमेव परिणमन्तेऽत्र पुद्‌गलाः कर्मभावेन।।१२।।
परिणममाणस्य चितःश्चिदात्मकैः स्वयमपि स्वकैर्भावै।
भवति हि निमित्तमात्रं पौद्‌गलिकं कर्म तस्यापि ।। -- पुरुषार्थसिद्‌ध्युपाये अमृचन्द्रसूरेः

जीवा पुग्गलकाया, अण्णोण्णागाढगहणपडिबुद्धा।
काले विजुज्जमाणा, सुह दुक्खं दिंति भुंजंति।।६७।।

यह लोक सब ओरसे सूक्ष्म और बादर भेदको लिये हुए, विविध प्रकारके अनंतानंत पुद्‌गलस्कंधोंसे ठसाठस भरा हुआ है।।६४।। जब यह जीव अशुद्ध रागादि परिणामको करता है तब उस जीवके स्थानोंमें नीर-क्षीरकी तरह एकावगाह होकर रहनेवाले कार्मणवर्गणारूप पुद्‌गल स्कंध स्वयं ही कर्मभावको प्राप्त हो जाते हैं।।६५।। जिस प्रकार अन्य पुद्‌गलद्रव्यमें विविध प्रकारके स्कंधोंकी रचना दूसरे द्रव्योंके द्वारा न की हुई स्वयमेव उत्पन्न देखी जाती है उसी प्रकार कार्मणवर्गणारूप पुद्‌गलद्रव्यमें भी कर्मरूप रचना स्वयमेव हो जाती है ऐसा जानो।।६६।। जीव और कर्मरूप पुद्‌गल स्कंध परस्परमें एकक्षेत्रावगाहके द्वारा अत्यंत सघन संबंधको प्राप्त हो रहे हैं। जब वे उदयकालमें बिछुड़ने लगते हैं -- एक दूसरेसे जुदे होने लगते हैं तब जीवमें सुख-दुःखादिका अनुभव होता है। बस, इसी निमित्त नैमित्तिक संबंधसे कहा जाता है कि कर्म सुख-दुःखरूप फल देते हैं और जीव उन्हें भोगते हैं।।६७।।

तम्हा कम्मं कत्ता, भावेण हि संजुदोध जीवस्स।
भोत्ता दु हवदि जीवो, चेदगभावेण कम्मफलं।।६८।।

इस कथनसे यह बात सिद्ध हुई कि जीवके मिथ्यात्व रागादिभावोंसे युक्त द्रव्यकर्म, सुख-दुःखादि रूप कर्मफलका कर्ता है, परंतु उसका भोक्ता चेतकभावके कारण जीव ही है।

पूर्वोक्त उद्देश्यसे यह बात फलित हुई कि निश्चय नयसे कर्म अपने आपका कर्ता है और व्यवहार नयसे जीवका। इसी प्रकार जीव भी निश्चय नयसे अपने आपका कर्ता है और व्यवहार नयसे कर्मका। यहाँ कर्म और कर्तृत्वका व्यवहार विवक्षावश जिस प्रकार जीव और कर्म दोनोंपर निर्भर ठहरता है उस प्रकार भोक्तृत्वका व्यवहार दोनोंपर निर्भर नहीं ठहरता। क्योंकि भोक्ता वही हो सकता है जिसमें चेतनगुण पाया जाता हो। चूँकि चेतनगुणका सद्‌भाव जीवमें ही है अतः वही अशुद्ध चेतकभावसे कर्मके फलका भोक्ता है।।६८।।

संसारपरिभ्रमणका कारण

एवं कत्ता भोत्ता, होज्झं अप्पा सगेहिं कम्मेहिं।
हिंडंति पारमपारं, संसारं मोहसंछण्णो।।६९।।

इस प्रकार यह जीव अपने ही शुभाशुभ कर्मोंसे मोहके द्वारा आच्छन्न हो कर्ताभोक्ता होता हुआ [1]सांत और अनंत संसारमें परिभ्रमण करता रहता है।।६९।।

---

१. भव्यापेक्षया सपारं (सान्तं) अभव्यापेक्षया त्वपारं (अनन्तं)। -- ज. वृ.

मोक्षप्राप्तिका उपाय

उवसंतखीणमोहो, मग्गं जिणभासिदेण समुपगदो।
णाणाणुमग्गचारी, णिव्वाणपुरं वजदि धीरो।।७०।।

जब यह जीव जिनेंद्रप्रणीत आगमके द्वारा सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूप मार्गको प्राप्त हो स्वसंवेदनज्ञानरूप मार्गमें विचरण करता है और विविध उपसर्ग तथा परिषह सहन करनेमें धीर वीर हो मोहनीय कर्मका उपशम अथवा क्षय करता है तब मोक्षनगरको प्राप्त करता है।।७०।।

जीवके अनेक भेद

एको चेव महप्पा, सो दुवियप्पो त्तिलक्खणो होदि।
चदुचंकमणो भणिदो, पंचग्गगुणप्पधाणो य।।७१।।
छक्कापक्कमजुत्तो, उवजुत्तो सत्तभंगसब्भावो।
अट्ठासओ णवत्थो, जीवो दसट्ठाणगो भणिदो।।७२।। जुम्मं

अविनाशी चैतन्यगुणसे युक्त रहनेके कारण वह जीवरूप महात्मा सामान्यकी अपेक्षा एक प्रकारका है। ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोगके भेदसे दो प्रकारका है। कर्मचेतना, कर्मफलचेतना और ज्ञानचेतनासे युक्त अथवा उत्पत्ति, विनाश और ध्रौव्यसे युक्त होनेके कारण तीन प्रकारका है। चार गतियोंमें चंक्रमण करनेके कारण चार प्रकारका है। औपशमिक आदि पाँच भावोंका धारक होनेसे पाँच प्रकारका है। चार दिशा तथा ऊपर और नीचे इस प्रकार छह ओर अपक्रम करनेके कारण छह प्रकारका है। स्यादस्ति आदि सात भंगोंसे युक्त होनेके कारण सात प्रकारका है। आठ कर्म अथवा आठ गुणोंका आश्रय होनेसे आठ प्रकारका है। नवपदार्थरूप प्रवृत्ति होनेसे नव प्रकारका है और पृथिवी, जल, तेज, वायु, साधारण वनस्पति, प्रत्येकवनस्पति, द्वींद्रिय, त्रींद्रिय, चतुरिंद्रिय तथा पंचेंद्रिय इन दश भेदोंसे युक्त होनेके कारण दश प्रकारका है।।७१-७२।।

मुक्त जीवोंके ऊर्ध्वगमन स्वभावका वर्णन

पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदेसबंधेहिं सव्वदो मुक्को।
उड्ढं गच्छदि सेसा, विदिसा वज्जं गदिं जंति।।७३।।

प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश इन चार प्रकारके बंधोंसे सर्वथा निर्मुक्त हुआ जीव केवल ऊपरकी ओर जाता है -- ऊर्ध्वगमन ही करता है और बाकीके जीव चार विदिशाओंको छोड़कर छह ओर गमन करते हैं।।७३।।

पुद्गल द्रव्यके चार भेद

खंधा य खंधदेसा, खंधपदेसा य होंति परमाणू।
इदि ते चदुव्वियप्पा, पुग्गलकाया मुणेयव्वा।।७४।।

स्कंध, एकस्कंध, स्कंधप्रदेश और परमाणु इस प्रकार पुद्गल द्रव्यके चार भेद हैं।।७४।।

स्कंध आदिके लक्षण

खंधं सयलसमत्थं, तस्स दु अद्धं भणंति देसोत्ति।
अद्धद्धं च पदेसो, परमाणू चेव अविभागी।।७५।।

समस्त परमाणुओंसे मिलकर बना हुआ पिंड स्कंध, स्कंधसे आधा स्कंधदेश, स्कंधदेशसे आधा स्कंधप्रदेश और अविभागी अंशको परमाणु कहते हैं।।७५।।

स्कंधोंके छह भेदोंका वर्णन

बादरसुहुमगदाणं, खंधाणं पुग्गलोत्ति ववहारो।
ते होंति छप्पयारा, तेलोक्कं जेहिं णिप्पण्णं।।७६।।

बादर और सूक्ष्म परिणमनको प्राप्त हुए स्कंधोंका पुद्गल शब्दसे व्यवहार होता है। वे स्कंध १. बादरबादर, २. बादर, ३. बादरसूक्ष्म, ४. सूक्ष्मबादर, ५. सूक्ष्म और ६. सूक्ष्मसूक्ष्मके भेदसे छह प्रकारके हैं। इन्हीं छह स्कंधोंसे तीन लोककी रचना हुई है।

जो पुद्गलपिंड दो खंड करनेपर अपने आप फिर न मिल सकें ऐसे काष्ठ, पाषाण आदिको **बादरबादर** कहते हैं। जो पुद्गल स्कंध खंड खंड होनेपर फिर भी अपने आपमें मिल जावें ऐसे जल, घृत आदि आदि पुद्गलोंको **बादर** कहते हैं। जो पुद्गलस्कंध देखनेमें स्थूल होनेपर भी ग्रहणमें न आवें ऐसे धूप, छाया, चाँदनी आदिको **बादरसूक्ष्म** कहते हैं। जो स्कंध नेत्रइंद्रियसे ग्रहणमें न आनेके कारण सूक्ष्म हैं परंतु अन्य इंद्रियोंके द्वारा ग्रहणमें आनेसे स्थूल हैं ऐसे स्पर्श रस गंधादिको **सूक्ष्मबादर** कहते हैं। जो स्कंध अत्यंत सूक्ष्म होनेके कारण किसी भी इंद्रियके द्वारा ग्रहणमें नहीं आवे ऐसे कार्मण वर्गणाके द्रव्यको **सूक्ष्म** कहते हैं। और कार्मण वर्गणासे नीचे द्व्यणुकस्कंध पर्यंतके पुद्गलद्रव्यको **सूक्ष्मसूक्ष्म** कहते हैं।।७६।।

परमाणुका लक्षण

सव्वेसिं खंधाणं, जो अंतो तं वियाण परमाणू।
सो सस्सदो असद्दो, एक्को अविभागी मुत्तिभवो।।७७।।

समस्त स्कंधोंका जो अंतिम भेद है उसे परमाणु जानना चाहिए। वह परमाणु नित्य है, शब्दरहित है, एक है, अविभागी है, मूर्तस्कंधसे उत्पन्न हुआ है और मूर्त स्कंधका कारण भी है।।७७।।

परमाणुकी विशेषता

आदेशमत्तमुत्तो, धादुचदुक्कस्स कारणं जो दु।
सो णेओ परमाणू, परिणामगुणो समयसद्दो।।७८।।

जो गुण-गुणीके संज्ञादि भेदोंसे मूर्तिक है, पृथ्वी, जल, अग्नि और वायुका समान कारण है, परिणमनशील है और स्वयं शब्दरहित है उसे परमाणु जानना चाहिए।

परमाणुको मूर्त सिद्ध करनेमें कारण स्पर्श, रस, गंध और वर्ण हैं। ये स्पर्शादि विवक्षा मात्रसे ही परमाणुसे भिन्न हैं, यथार्थमें प्रदेशभेद नहीं होनेसे अभिन्न हैं। परमाणुसे पृथिवी, जल, अग्नि और वायुकी उत्पत्ति समानरूपसे होती है। पृथिवी आदिके परमाणुओंकी जातियाँ पृथक्-पृथक् नहीं हैं। यह परमाणु परिणमन स्वभाववाला है इसलिए उसमें कालकृत परिणमन होनेसे पृथ्वी जल आदि रूप परिणमन स्वयं हो जाता है। इसके सिवाय स्कंधमें जिस प्रकार शब्द होते हैं उस प्रकार परमाणुमें शब्द नहीं होते क्योंकि वह एकप्रदेशी होनेसे शब्दोत्पत्ति में कारण नहीं है।।७८।।

शब्दका कारण

सद्दो खंधप्पभवो, खंधो परमाणुसंगसंघादो।
पुट्ठेसु तेसु जायदि, सद्दो उप्पादगो णियदो।।७९।।

शब्द स्कंधसे उत्पन्न होता है, स्कंध अनेक परमाणुओंके समुदायको कहते हैं। जब वे स्कंध परस्पर स्पर्शको प्राप्त होते हैं तभी शब्द उत्पन्न होता है। शब्दके उत्पादक -- भाषावर्गणाके स्कंध निश्चित हैं अर्थात् शब्दकी उत्पत्ति भाषावर्गणाके स्कंधोंसे ही होती है, आकाशसे नहीं। [1]अथवा उस शब्दके दो भेद हैं -- उत्पादित -- पुरुषप्रयोगोत्पन्न और नियत -- वैश्रसिक -- मेघादिसे उत्पन्न होनेवाला शब्द।।७९।।

परमाणुकी अन्य विशेषताओंका वर्णन

णिच्चो णाणवकासो, ण सावकासो पदेसदो भेत्ता।
खंधाणं पि य कत्ता, पविहत्ता कालखंधाणं।।८०।।

वह परमाणु अपने एक प्रदेशरूप परिणमनसे कभी नष्ट नहीं होता इसलिए नित्य है। स्पर्शादि गुणोंको अवकाश देनेके कारण सावकाश है। द्वितीयादि प्रदेशोंको अवकाश न देनेके कारण अनवकाश है। समुदायसे बिछुड़कर अलग हो जाता है इसलिए स्कंधोंका भेदक है। समुदायमें मिल जाता है इसलिए स्कंधोंका कर्ता है और चूँकि मंदगतिके द्वारा आकाशके एक प्रदेशसे दूसरे प्रदेशपर पहुँचकर समयका विभाग करता है इसलिए कालका तथा द्रव्य क्षेत्र काल भावरूप चतुर्विध संख्याओंका विभाजक है।।८०।।

---

१. अथवा उप्पादिगो प्रायोगिकः पुरुषादिप्रयोगप्रभवः णियदो नियतो वैश्रसिको मेघादिप्रभवः। -- ज. वृ.

परमाणुमें रस गंध आदि गुणोंका वर्णन

एयरसगंधवण्णं, दो फासं सद्दकारणमसद्दं।
खंधंतरिदं दव्वं, परमाणुं तं वियाणेहि।।८०।।

जो द्रव्य एकरस, एकवर्ण, एकगंध और स्पर्शोंसे रहित है, शब्दका कारण है, स्वयं शब्दसे रहित है और स्कंधसे जुदा है अथवा स्कंधके अंतर्गत होनेपर भी स्वस्वभावकी अपेक्षा उससे पृथक् है उसे परमाणु जानो।।८१।।

पुद्गल द्रव्यका विस्तार

उवभोज्जमिंदियेहिं य, इंदिय काया मणो य कम्माणि।
जं हवदि मुत्तमण्णं, तं सव्वं पुग्गलं जाणे।।८२।।

पाँच इंद्रियोंके उपभोग्य विषय, पाँच इंद्रियाँ, शरीर, मन, कर्म तथा अन्य जो कुछ मूर्तिक द्रव्य है वह सब पुद्गल द्रव्य जानना चाहिए।।८२।।

धर्मास्तिकायका वर्णन

धम्मत्थिकायमरसं, अवण्णगंधं असद्दमप्फासं।
लोगोगाढं पुट्ठं, पिहुलमसंखादियपदेसं।।८३।।

धर्मास्तिकाय रसरहित है, वर्णरहित है, गंधरहित है, शब्दरहित है, स्पर्शरहित है, समस्त लोकमें व्याप्त है, अखंडप्रदेशी होनेसे स्पृष्ट है -- परस्पर प्रदेशव्यवधान रहित होनेसे निरंतर है, विस्तृत है और असंख्यातप्रदेशी है।।८३।।

अगुरुलघुगेहिं सया, तेहिं अणंतेहिं परिणदं णिच्चं।
गदिकिरियाजुत्ताणं, कारणभूदं सयमकज्जं।।८४।।

वह धर्मास्तिकाय अपने अनंत अगुरुलघु गुणोंके द्वारा निरंतर परिणमन करता रहता है, स्वयं गति क्रियासे युक्त जीव और पुद्गलोंकी गति क्रियाका कारण है और स्वयं अकार्य रूप है।।८४।।

उदयं जह मच्छाणं, गमणाणुग्गहयरं हवदि लोए।
तह जीवपुग्गलाणं, धम्मं दव्वं वियाणेहि।।८५।।

जिस प्रकार लोकमें जल मछलियोंके गमन करनेमें अनुग्रह करता है उसी प्रकार धर्मद्रव्य जीव और पुद्गल द्रव्यके गमन करनेमें अनुग्रह करता है।।८५।।

अधर्मास्तिकायका वर्णन

जह हवदि धम्मदव्वं, तह तं जाणेह दव्वमधमक्खं।
ठिदिकिरियाजुत्ताणं, कारणभूदं तु पुढवीव।।८६।।

जैसा धर्मास्तिकायका स्वरूप ऊपर कहा गया है वैसा ही अधर्मास्तिकायका स्वरूप जानना चाहिए। विशेषता इतनी ही है कि यह स्थितिक्रियासे युक्त जीव और पुद्गल द्रव्यके स्थिति करनेमें ठहरनेमें पृथिवीकी तरह कारण है।।८६।।

धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकायकी विशेषताओंका वर्णन

जादो अलोगलोगो, तेसिं सब्भावदो य गमणठिदी।
दो वि य मया विभत्ता, अविभत्ता लोयमेत्ता य।।८७।।

जिनके सद्भावसे लोक और अलोक हुआ है तथा गमन और स्थिति होती है वे धर्म और अधर्म दोनों ही अस्तिकाय परस्परविभक्त हैं -- जुदे-जुदे हैं, एक क्षेत्रावगाही होनेसे अविभक्त हैं और लोकप्रमाण हैं।।८७।।

ण य गच्छदि धम्मत्थी, गमणं ण करेदि अण्णदवियस्स।
हवदि गती सप्पसरो, जीवाणं पुग्गलाणं च।।८८।।

धर्मास्तिकाय न स्वयं गमन करता है और न प्रेरक होकर अन्य द्रव्यका गमन कराता है। वह केवल उदासीन रहकर ही जीवों और पुद्गलोंकी गतिका प्रवर्तक होता है।।८८।।

विज्जदि जेसिं गमणं, ठाणं पुण तेसिमेव संभवदि।
ते सगपरिणामेहिं दु, गमणं ठाणं च कुव्वंति।।८९।।

जिन जीव और पुद्गलोंका चलना तथा स्थिर होना होता है उन्हींका फिर स्थिर होना तथा चलना होता है। इससे सिद्ध होता है कि वे अपने-अपने उपादान कारणोंसे ही गमन तथा स्थिति करते हैं। धर्म और अधर्म द्रव्य केवल सहायक कारण हैं। यदि इन्हें प्रेरक कारण माना जाय तो जो जीव या पुद्गल चलते वे चलते ही जाते और जो ठहरते वे ठहरते ही रहते, क्योंकि विरुद्ध प्रवृत्तिसे दोनोंमें परस्पर मत्सर होना संभव है।।८९।।

आकाशास्तिकायका लक्षण

सव्वेसिं जीवाणं, सेसाणं तह य पुग्गलाणं च।
जं देदि विवरमखिलं, तं लोए हवदि आयासं।।९०।।

समस्त जीवों और पुद्गलोंको तथा धर्म, अधर्म और कालको जो संपूर्ण अवकाश देता है अर्थात् जिसके समस्त प्रदेशोंमें जीवादि द्रव्य व्याप्त हैं वह लोकके भीतरका आकाश है -- लोकाकाश है।।९०।।

लोक और अलोकका विभाग

जीवा पुग्गलकाला, धम्माधम्मा य लोगदो णण्णा।
तत्तो अणण्णमण्णं, आयासं अंतवदिरित्तं।।९१।।

जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और काल ये पाँचों लोकसे जुदे नहीं हैं -- इन पाँचोंका सद्भाव लोकमें ही पाया जाता है, परंतु आकाश लोकसे अपृथक् भी है और पृथक् भी है -- आकाश लोक और अलोक दोनोंमें व्याप्त है, वह अनंत है।।९१।।

आकाश ही को गति और स्थितिका कारण माननेमें दोष

आगासं अवगासं, गमणट्ठिदि कारणेहिं देदि जदि।
उड्ढं गदिप्पधाणा, सिद्धा चिट्ठंति किध तत्थ।।९२।।

यदि ऐसा माना जाय कि आकाश ही अवकाश देता है और आकाश ही गमन स्थितिका कारण है तो फिर ऊर्ध्वगतिमें जानेवाले सिद्ध परमेष्ठी लोकाग्रपर ही क्यों रुक जाते है? लोकाग्रके आगे आकाशका अभाव तो है नहीं, अतः उसके आगे भी उसका गमन होता रहना चाहिए, परंतु ऐसा होता नहीं है। इससे सिद्ध होता है कि आकाशका काम अवकाश देना ही है और धर्म तथा अधर्मका काम चलने और ठहरनेमें सहायता देना ही।।९२।।

जम्हा उवरिट्ठाणं, सिद्धाणं जिणवरेहिं पण्णत्तं।
तम्हा गमणट्ठाणं, आयासे जाण णत्थित्ति।।९३।।

यतः जिनेंद्र भगवानने सिद्धोंका अवस्थान लोकके अग्रभागमें ही बतलाया है, अतः आकाशमें गमन और स्थितिका हेतुत्व नहीं पाया जा सकता ऐसा जानना चाहिए।।९३।।

जदि हवदि गमणहेदू, आगासं ठाणकारणं तेसिं।
पसजदि अलोगहाणी, लोगस्स य अंतपरिवुड्ढी।।९४।।

यदि आकाशको जीव और पुद्गलोंकी गति और स्थितिका कारण माना जायेगा तो अलोककी हानि होगी और लोकके अंतकी वृद्धि भी। अलोकका व्यवहार मिट जायेगा और लोककी सीमा टूट जायेगी।।९४।।

तम्हा धम्माधम्मा, गमणट्ठिदिकारणाणि णागासं।
इदि जिणवरेहिं भणिदं, लोगसहावं सुणंताणं।।९५।।

'इसलिए धर्म और अधर्म द्रव्य ही गमन तथा स्थितिके कारण हैं, आकाश नहीं है' ऐसा जिनेंद्रदेवने लोकका स्वभाव सुननेवालोंसे कहा है।।९५।।

धर्म, अधर्म और आकाशकी एकरूपता तथा अनेकरूपता का वर्णन

धम्माधम्मागासा, अपुधब्भूदा समाणपरिणामा।
पुधगुवलद्धिविसेसा, करंति एगत्तमण्णत्तं।।९६।।

धर्म, अधर्म और लोकाकाश ये तीनों ही द्रव्य एकक्षेत्रावगाही होनेसे अपृथग्भूत हैं, समान परिणामवाले

हैं और अपने अपने विशेष स्वभावको लिये हुए हैं। ये तीनों व्यवहार नयकी अपेक्षा एक क्षेत्रावगाही होनेसे एक भावको और निश्चयनयकी अपेक्षा जुदी-जुदी सत्ता के धारक होनेसे भेदभावको धारण करते हैं।।९६।।

द्रव्योंमें मूर्त और अमूर्त द्रव्यका विभाग

आगासकालजीवा, धम्माधम्मा य मुत्तिपरिहीणा।
मुत्तं पुग्गलदव्वं, जीवो खलु चेदणो तेसु।।९७।।

आकाश, काल, जीव, धर्म और अधर्म ये पाँच द्रव्य मूर्ति -- रूप, रस, गंध, स्पर्शसे रहित हैं, केवल पुद्गल द्रव्य मूर्त है। उक्त छहों द्रव्योंमें जीवद्रव्य ही चेतन है, अवशिष्ट पाँच द्रव्य अचेतन हैं।।९७।।

जीव और पुद्गल द्रव्य ही क्रियावंत हैं

जीवा पुग्गलकाया, सह सक्किरिया हवंति ण य सेसा।
पुग्गलकरणा जीवा, खंधा खलु कालकरणा दु।।९८।।

जीवद्रव्य और पुद्गल द्रव्य ही क्रियासहित हैं, अवशिष्ट चार द्रव्य क्रियासहित नहीं हैं। जीवद्रव्य पुद्गल द्रव्यका निमित्त पाकर और पुद्गल स्कंध कालका निमित्त पाकर क्रियायुक्त होते हैं।।९८।।

मूर्तिक और अमूर्तिकका लक्षण

जे खलु इंदियगेज्झा, विसया जीवेहिं हुंति ते मुत्ता।
सेसं हवदि अमुत्तं, चित्तं उभयं समादियदि।।९९।।

जीव जिन पदार्थोंको इंद्रियद्वारा ग्रहण करते हैं -- जानते हैं वे मूर्तिक हैं और बाकीके अमूर्तिक हैं। मन मूर्तिक तथा अमूर्तिक दोनों प्रकारके पदार्थोंको जानता है।।९९।।

काल द्रव्यका कथन

कालो परिणामभवो, परिणामो दव्वकालसंभूदो।
दोण्हं एस सहावो, कालो खणभंगुरो णियदो।।१००।।

व्यवहारकाल जीव पुद्गलोंके परिणामसे उत्पन्न है तथा जीव पुद्गलोंका परिणाम निश्चय कालाणुरूप द्रव्यसे संभूत है। जीव और पुद्गलके परिणमनको देखकर व्यवहारकालका ज्ञान होता है और चूँकि विना निश्चयकालके जीव पुद्गलोंका परिणमन नहीं हो सकता इसलिए जीव पुद्गलके परिणमनसे निश्चयकालका ज्ञान होता है। दोनों कालोंका यही स्वभाव है। व्यवहारकाल पर्यायप्रधान होनेसे क्षणभंगुर है और निश्चयकाल द्रव्यप्रधान होनेसे नित्य है।।१००।।

कालो त्ति य ववदेसो, सब्भावपरूवगो हवदि णिच्चो।
उप्पण्णप्पद्धंसी, अवरो दीहंतरट्ठाई।।१०१।।

'यह काल है' इस प्रकार जिसका व्यपदेश -उल्लेख होता है वह अपना सद्भाव बतलाता हुआ

नित्यद्रव्य है। जिसप्रकार 'सिंह' यह शब्द सिंह शब्दवाच्य मृगेंद्र अर्थका प्ररूपक है उसी प्रकार 'काल' यह शब्द, कालशब्दवाच्य निश्चयकालद्रव्यका प्ररूपक है। दूसरा व्यवहारकाल उत्पन्न होता है और नष्ट होता है तथा समयोंकी परंपराकी अपेक्षा स्थायी भी है।।१०१।।

जीवादि द्रव्य अस्तिकाय हैं, काल अस्तिकाय नहीं है

एदे कालागासा, धम्माधम्मा य पुग्गला जीवा।
लब्भंति दव्वसण्णं, कालस्स दु णत्थि कायत्तं।।१०२।।

यही सब जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, काल और आकाश द्रव्य व्यपदेशको प्राप्त हैं -- द्रव्य कहलाते हैं, परंतु जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाशमें बहुप्रदेशी होनेसे जिसप्रकार अस्तिकायपना है उस प्रकार कालद्रव्यमें नहीं है। कालद्रव्य एकप्रदेशात्मक होनेसे अस्तिकाय नहीं है।।१०२।।

पंचास्तिकाय संग्रहके जाननेका फल

एवं पवयणसारं, पंचत्थियसंगहं वियाणित्ता।
जो मुयदि रागदोसे, सो गाहदि दुक्खपरिमोक्खं।।१०३।।

इस प्रकार पंचास्तिकायके संग्रहस्वरूप द्वादशांगके सारको जानकर जो राग और द्वेष छोड़ता है वह संसारके दुःखोंसे छुटकारा पाता है।।१०३।।

मुणिऊण एतदट्ठं, तदणुगमणुज्झदो णिहदमोहो।
पसमियरागद्दोसो, हवदि हदपरावरो जीवो।।१०४।।

इस शास्त्रके रहस्यभूत शुद्ध चैतन्यस्वरूप आत्माको जानकर जो पुरुष तन्मय होनेका प्रयत्न करता है वह दर्शनमोहको नष्ट कर राग-द्वेषका प्रशमन करता हुआ संसाररहित हो जाता है। पूर्वापर बंधसे रहित हो मुक्त हो जाता है।।१०४।।

इस प्रकार छह द्रव्य और पंचास्तिकायका वर्णन करनेवाला प्रथम श्रुतस्कंध समाप्त हुआ।

***

मोक्षमार्गके कथनकी प्रतिज्ञा

अभिवंदिऊण सिरसा, अपुणब्भवकारणं महावीरं।
तेसिं पयत्थभंगं, मग्गं मोक्खस्स वोच्छामि।।१०५।।

अब मैं मोक्षके कारणभूत श्री महावीरस्वामीको मस्तकद्वारा नमस्कार कर मोक्षके मार्गस्वरूप नव पदार्थोंको कहूँगा।।१०५।।

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रकी एकता मोक्षका मार्ग है

सम्मत्तणाणजुत्तं, चारित्तं रागदोसपरिहीणं।
मोक्खस्स हवदि मग्गो, भव्वाणं लद्धबुद्धीणं।।१०६।।

सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानसे युक्त राग-द्वेषरहित सम्यक् चारित्र मोक्षका मार्ग है। यह मोक्षका मार्ग स्वपरभेद विज्ञानी भव्यजीवोंको ही प्राप्त होता है।।१०६।।

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रका स्वरूप

सम्मत्तं सद्दहणं, भावाणं तेसिमधगमो णाणं।
चारित्तं समभावो, विसयेसु [१]विरूढमग्गाणं।।१०७।।

पूर्वोक्त जीवादि पदार्थोंका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है, उन्हींक़ा ज्ञान होना सम्यग्ज्ञान है और पंचेंद्रियोंके इष्ट अनिष्ट विषयोंमें समताभाव धारण करना सम्यक्चारित्र है। यह मोक्षमार्गमें दृढ़ताके साथ प्रवृत्ति करनेवालोंके ही होता है।।१०७।।

नौ पदार्थोंके नाम

जीवाजीवा भावा, पुण्णं पावं च आसवं तेसिं।
संवरणिज्जरबंधो, मोक्खो य हवंति ते अट्ठा।।१०८।।

जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष ये नौ पदार्थ हैं।।१०८।।

जीवोंके भेद

जीवा संसारत्था, णिव्वादा चेदणप्पगा दुविहा।
उवओगलक्खणा वि य, देहादेहप्पवीचारा।।१०९।।

जीव दो प्रकारके हैं -- संसारी और मुक्त। दोनों ही चैतन्यस्वरूप और उपयोगलक्षणसे युक्त हैं। संसारी जीव शरीरसे युक्त हैं और मुक्त जीव शरीरसे रहित हैं।।१०९।।

स्थावरकायका वर्णन

पुढवी य उदगमगणी, वाउवणप्फदिजीवसंसिदा काया।
देंति खलु मोहबहुलं, फासं बहुगा वि ते तेसिं।।११०।।

पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति ये पुद्गलके पर्याय जीवके साथ मिलकर काय कहलाने

---

१. 'सम्यग्दर्शनज्ञानसन्निधानादमार्गेभ्यः समग्रेभ्यः परिच्युत्य स्वतत्त्वे विशेषेण रूढमार्गाणां सतामिन्द्रियानिन्द्रिय-विषयभूतेष्वर्थेषु' -- ता. वृ.। 'पूर्वोक्तसम्यक्त्वज्ञानबलेन समस्तान्यमार्गेभ्यः प्रच्युत्य विशेषेण रूढमार्गाणां परिज्ञातमोक्षमार्गाणाम्।' -- ज. वृ.

लगते हैं। यद्यपि ये अपने अवांतर भेदोंकी अपेक्षा बहुत प्रकारके हैं तथापि स्पर्शनेंद्रियावरणके क्षयोपशमसे युक्त एकेंद्रिय जीवोंको मोहबहुल स्पर्श प्राप्त कराते हैं।।११०।।

स्थावर और त्रसका विभाग

तित्थावरतणुजोगा, अणिलाणलकाइया य तेसु तसा।
मणपरिणामविरहिदा, जीवा एइंदिया णेया।।१११।।

उक्त पाँच प्रकारके जीवोंमें स्थावर शरीर प्राप्त होनेसे पृथिवीकायिक, जलकायिक और वनस्पतिकायिक ये तीन स्थावर कहलाते हैं और चलनात्मक शरीर प्राप्त होनेसे अग्निकायिक तथा वायुकायिक त्रस कहलाते हैं। ये सभी जीव मनसे रहित हैं और एकेंद्रिय हैं [१]।।१११।।

पृथिवीकायिक आदि स्थावर एकेंद्रिय ही हैं

एदे जीवणिकाया, पंचविहा पुढविकाइयादीया।
मणपरिणामविरहिदा, जीवा एगिंदिया भणिया।।११२।।

ये पृथिवीकायिक आदि पाँच प्रकारके जीव मनरहित हैं और एकेंद्रियजाति नामकर्मका उदय होनेसे सभी एकेंद्रिय कहे गये हैं।।११२।।

एकेंद्रियोंमें जीवके अस्तित्वका समर्थन

अंडेसु पवड्ढंता, गब्भत्था माणुसा य मुच्छगया।
जारिसया तारिसया, जीवा एगेंदिया णेया।।११३।।

जिस प्रकार अंडेमें बढ़नेवाले तिर्यंचों और गर्भमें स्थित तथा मूर्च्छित मनुष्योंमें बुद्धिपूर्वक बाह्य व्यापार न दिखनेपर भी जीवत्वका निश्चय किया जाता है उसी प्रकार एकेंद्रिय जीवोंके भी बाह्य व्यापार न दिखनेपर भी जीवत्वका निश्चय किया जाता है।।११३।।

द्वींद्रिय जीवोंका वर्णन

संबुक्कमादुवाहा, संखा सिप्पी अपादगा य किमी।
जाणंति रसं फासं, जे ते बेइंदिया जीवा।।११४।।

जो शंबूक, मातृवाह, शंख तथा पादरहित कृमि-लट आदि जीव केवल स्पर्श और रसको जानते हैं वे दो इंद्रिय जीव हैं।।११४।।

---

१. यहाँ अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंको जो त्रस कहा है वह केवल उनके शरीरकी चलनात्मक क्रिया देखकर ही कहा है। यथार्थमें इन सबकके त्रस नामकर्मका उदय न होकर स्थावर नामकर्मका उदय रहता है, अतः वे सभी स्थावर ही हैं।

त्रींद्रिय जीवोंका वर्णन

जूभागुंभीमक्कणपिपीलिया विच्छियादिया कीडा।
जाणंति रसं फासं, गंधं तेइंदिया जीवा।।११५।।

यतः जूँ, कुंभी, खटमल, चींटी तथा बिच्छू आदि कीड़े स्पर्श, रस और गंधको जानते हैं अतः वे तीन इंद्रिय जीव हैं।।११५।।

चतुरिंद्रिय जीवोंका वर्णन

उद्दंसमसयमक्खियमधुकरभमरा पतंगमादीया।
रूपं रसं च गंधं, फासं पुण ते वि जाणंति।।११६।।

डांस, मच्छर, मक्खी, मधुमक्खी, भ्रमर और पतंग आदि जीव स्पर्श, रस, गंध और रूपको जानते हैं अतः वे चार इंद्रिय जीव हैं।।११६।।

पंचेंद्रिय जीवोंका वर्णन

सुरणरणारयतिरिया, वण्णरसप्फास गंधसद्दण्हू।
जलचर थलचर खचरा, वलिया पंचेंदिया जीवा।।११७।।

देव, मनुष्य, नारकी और तिर्यंच वर्ण, रस, गंध, स्पर्श और शब्दको जानते हैं, अतः पाँच इंद्रिय हैं। पंचेंद्रिय तिर्यंच जलचर, स्थलचर और नभश्चरके भेदसे तीन प्रकारके हैं। सभी पंचेंद्रिय कायबल, वचनबल और यथासंभव मनोबलसे युक्त होते हैं।।११७।।

देवा चउण्णिकाया, मणुया पुण कम्मभोगभूमीया।
तिरिया बहुप्पयारा, णेरइया पुढविभेयगदा।।११८।।

देव भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिष और वैमानिकके भेदसे चार प्रकारके हैं। मनुष्य कर्मभूमि और भोगभूमिके भेदसे दो प्रकारके हैं। तिर्यंच अनेक प्रकारके हैं और नारकी रत्नप्रभा आदि पृथिवियोंके भेदसे सात प्रकारके हैं।।११८।।

जीवोंका अन्य पर्यायोंमें गमन

खीणे पुव्वणिबद्धे, गदिणामे आउसे च ते वि खलु।
पापुण्णंति य अण्णं, गदिमाउस्सं सलेस्सवसा।।११९।।

पूर्वनिबद्ध गतिनामकर्म तथा आयुकर्मके क्षीण हो जानेपर वे जीव निश्चयसे अपनी-अपनी लेश्याओंके अनुसार अन्य गति और अन्य आयुको प्राप्त होते हैं।।११९।।

संसारी, मुक्त, भव्य तथा अभव्योंका वर्णन

एदे जीवणिकाया, देहप्पविचारमस्सिदा भणिदा।
देहविहूणा सिद्धा, भव्वा संसारिणो अभव्वा य।।१२०।।

ऊपर कहे हुए ये समस्त जीव शरीरके परिवर्तनको प्राप्त हैं -- एकके बाद एक शरीरको बदलते रहते हैं। सिद्ध जीव शरीरसे रहित हैं और संसारी जीव भव्य-अभव्यके भेदसे दो प्रकारके हैं।।१२०।।

इंद्रियादिक जीव नहीं हैं

ण हि इंदियाणि जीवा, काया पुण छप्पयार पण्णत्ता।
जं हवदि तेसु णाणं, जीवो त्ति य तं परूवंति।।१२१।।

न स्पर्शनादि इंद्रियाँ जीव हैं, न उल्लिखित पृथिवीकायादि छह प्रकारके काय जीव हैं, किंतु उनमें जो ज्ञान है-- चैतन्य है, वही जीव है ऐसा महापुरुष कहते हैं।।१२१।।

जीवकी विशेषता

जाणदि पस्सदि सव्वं, इच्छदि सुक्खं विभेदि दुक्खादो।
कुव्वदि हिदमहिदं वा, भुंजदि जीवो फलं तेसिं।।१२२।।

जीव सबको जानता है, सबको देखता है, सुखको चाहता है, दुःखसे डरता है, शुभ कार्य करता है, अशुभ कार्य करता है और उनके फल भी भोगता है।।१२२।।

एवमभिगम्म जीवं, अण्णेहिं वि पज्जएहिं बहुगेहिं।
अभिगच्छदु अज्जीवं, णाणंतरिदेहिं लिंगेहिं।।१२३।।

इस प्रकार और भी अनेक पर्यायोंके द्वारा जीवको जानकर ज्ञानसे भिन्न स्पर्श आदि चिह्नोंसे अजीवको जानो।।१२३।।

द्रव्योंमें चेतन और अचेतनका वर्णन

आगासकालपुग्गल,धम्माधम्मेसु णत्थि जीवगुणा।
तेसिं अचेदणत्तं भणिदं जीवस्स चेदणदा।।१२४।।

आकाश, काल, पुद्गल, धर्म और अधर्ममें जीवके गुण नहीं हैं, उनमें अचेतनता कही गयी है। चेतनता केवल जीवका ही गुण है।।१२४।।

अजीवका लक्षण

सुहदुक्खजाणणा वा, हिदपरियम्मं च अहिदभीरुत्तं।
जस्स ण विज्जदि णिच्चं, तं समणा विंति अज्जीवं।।१२५।।

जिसमें सुख-दुःखका ज्ञान, हितकी प्रवृत्ति और अहितका भय नहीं है, गणधरादि मुनि उसे अजीव

कहते हैं।।१२५।।

शरीररूप पुद्गल और जीवमें पृथक्त्वपनका वर्णन

संठाणा संघादा, वण्णरसप्फासगंधसद्दा य।
पोग्गलदव्वप्पभवा, होंति गुणा पज्जया य बहू।।१२६।।
अरसमरूवमगंधमव्वत्तं चेदणागुणमसद्दं।
जाण अलिंगग्गहणं, जीवमणिद्दिट्ठसंठाणं।।१२७।।

समचतुरस्र आदि संस्थान, औदारिकादि शरीरसंबंधी संघात, वर्ण, रस, गंध, स्पर्श और शब्द आदि जो अनेक गुण तथा पर्याय दिखती हैं वे सब पुद्गल द्रव्यसे समुत्पन्न हैं। परंतु जीव रसरहित है, रूपरहित है, गंधरहित है, अव्यक्त है, चेतनागुणसे युक्त है, शब्दरहित है, बाह्य इंद्रियोंके द्वारा अग्राह्य है और संस्थान -- आकाररहित है, ऐसा जानो।।१२६-१२७।।

जीवके संसारभ्रमणका कारण

जो खलु संसारत्थो, जीवो तत्तो दु होदि परिणामो।
परिणामादो कम्मं, कम्मादो होंति गदिसु गदी।।१२८।।
गदिमधिगदस्स देहो, देहादो इंद्रियाणि जायंते।
तेहिं दु विसयग्गहणं, तत्तो रागो व दोसो वा।।१२९।।
जायदि जीवस्सेवं, भावो संसारचक्कवालम्मि।
इदि जिणवरेहिं भणिदो, अणादिणिधणो सणिधणो वा।।१३०।।

जो यह संसारी जीव है उसके राग-द्वेष आदि अशुद्ध भाव होते हैं, उनसे ज्ञानावरणादि आठ कर्मोंका बंध होता है, कर्मोंसे एक गतिसे दूसरी गति प्राप्त होती है, गतिको प्राप्त हुए जीवके औदारिकादि शरीर होता है, शरीरसे इंद्रियाँ उत्पन्न होती हैं, इंद्रियोंसे विषयग्रहण होता है और उससे राग तथा द्वेष उत्पन्न होते हैं। संसाररूपी चक्रमें भ्रमण करनेवाले जीवके ऐसे अशुद्ध भाव अभव्यकी अपेक्षा अनादि अनंत और भव्यकी अपेक्षा अनादि-सांत होते हैं, ऐसा श्री जिनेंद्रदेवने कहा है।।१२८-१३०।।

जीवके शुभ-अशुभ भावोंका वर्णन

मोहो रागो दोसो, चित्तपसादो य जस्स भावम्मि।
विज्जदि तस्स सुहो वा, असुहो वा होदि परिणामो।।१३१।।

जिस जीवके हृदयमें मोह, राग, द्वेष और चित्तकी प्रसन्नता रहती है उसके शुभ अथवा अशुभ परिणाम अवश्य होते हैं अर्थात् जिसके हृदयमें प्रशस्त राग और चित्तकी प्रसन्नता होगी उसके शुभ परिणाम

होंगे और जिसके हृदयमें मोह, द्वेष, अप्रशस्त राग तथा चित्तका अनुत्साह होगा उससे अशुभ परिणाम होंगे।।१३१।।

पुण्य और पापका लक्षण

सुहपरिणामो पुण्णं, असुहो पावंति हवदि जीवस्स।
दोण्हं पोग्गलमेत्तो, भावो कम्मत्तणं पत्तो।।१३२।।

जीवका शुभ परिणाम पुण्य कहलाता है और अशुभ परिणाम पाप। इन दोनों ही परिणामों से कार्मणवर्गणारूप पुद्‍गल द्रव्य कर्म अवस्थाको प्राप्त होता है।।१३२।।

कर्म मूर्तिक हैं

जम्हा कम्मस्स फलं, विसयं फासेहिं भुंजदे णियदं।
जीवेण सुहं दुक्खं, तम्हा कम्माणि मुत्ताणि।।१३३।।

चूँकि कर्मोंके फलभूत सुख-दुःखादिके कारणरूप विषयोंका उपभोग स्पर्शनादि मूर्त इंद्रियोंके द्वारा होता है अतः कर्म मूर्त हैं।।१३३।।

पूर्व मूर्त कर्मोंके साथ नवीन मूर्त कर्मोंका बंध होता है

मुत्तो फासदि मुत्तं, मुत्तो मुत्तेण बंधमणुहवदि।
जीवो मुत्तिविरहिदो, गाहदि ते तेहिं उग्गहदि।।१३४।।

इस संसारी जीवके अनादि परंपरासे आये हुए मूर्त कर्म विद्यमान हैं। वे मूर्त कर्महीआगामी मूर्त कर्मका स्पर्श करते हैं। अतः मूर्त द्रव्य ही मूर्त द्रव्यके साथ बंधको प्राप्त होता है। जीव मूर्तिरहित है-- अमूर्त है, अतः यथार्थमें उसका कर्मोंके साथ संबंध नहीं होता। परंतु मूर्त कर्मोंके साथ संबंध होनेके कारण व्यवहार नयसे जीव मूर्तिक कहा जाता है। अतः वह रागादि परिणामोंसे स्निग्ध होनेके कारण मूर्त कर्मोंके साथ संबंधको प्राप्त होता है और कर्म जीवके साथ संबंधको प्राप्त होते हैं।।१३४।।

पुण्यकर्मका आस्रव किसके होता है?

रागो जस्स पसत्थो, अणुकंपासंसिदो य परिणामो।
चित्ते णत्थि कलुस्सं, पुण्णं जीवस्स आसवदि।।१३५।।

जिस जीवका राग प्रशस्त है, परिणाम दयासे युक्त हैं और हृदय कलुषतासे रहित है उसके पुण्यकर्मका आस्रव होता है।।१३५।।

प्रशस्त रागका लक्षण

अरहंतसिद्धसाहुसु, भत्ती धम्मम्मि जा य खलु चेट्ठा।
अणुगमणं पि गुरूणं, पसत्थरागो त्ति वुच्चंति।।१३६।।

अरहंत सिद्ध साधुओंमें भक्ति होना, शुभरागरूप धर्ममें प्रवृत्ति होना तथा गुरुओंके अनुकूल चलना यह सब प्रशस्त राग है, ऐसा पूर्व महर्षि कहते हैं।।१३६।।

अनुकंपाका लक्षण

तिसिदं बुभुक्खिदं वा, दुहिदं दट्ठूण जो दु दुहिदमणो।
पडिवज्जदि तं किवया, तस्सेसा होदि अणुकंपा।।१३७।।

जो भूखे-प्यासे अथवा अन्य प्रकारसे दुःखी प्राणियोंको देखकर स्वयं दुःखित होता हुआ दयापूर्वक उसे अपनाता है -- उसका दुःख दूर करनेका प्रयत्न करता है उसके अनुकंपा होती है।।१३७।।

कोधो व जदा माणो, माया लोभो व चित्तमासेज्ज।
जीवस्स कुणदि खोहं, कलुसो त्ति य तं बुधा वेंति।।

क्रोध, मान, माया और लोभ चित्तको प्राप्त कर आत्मामें जो क्षोभ उत्पन्न करते हैं, पंडित जन उसे कालुष्य कहते हैं।।१३८।।

पापास्रवके कारण

चरिया पमादबहुला, कालुस्सं लोलदा य विसयेसु।
परपरितावपवादो, पावस्स य आसवं कुणदि।।१३९।।

प्रमादसे भरी हुई प्रवृत्ति, कलुषता, विषयोंकी लोलुपता, दूसरोंको संताप देना और उसका अपवाद करना यह सब पापास्रवके कारण हैं।।१३९।।

सण्णाओ य तिलेस्सा, इंदियवसदा य [१] अत्तरुद्दाणि।
णाणं च दुप्पउत्तं, मोहो पावप्पदा होंति।।१४०।।

आहार आदि चार संज्ञाएँ, कृष्ण आदि तीन लेश्याएँ, पंचेंद्रियोंकी पराधीनता, आर्त-रौद्र ध्यान, असत्कार्यमें प्रयुक्त ज्ञान और मोह ये सब पापास्रव करानेवाले हैं।।१४०।।

पापास्रवको रोकनेवाले कारण

इंदियकसायसण्णा, णिग्गहिदा जेहिं सुट्ठुमग्गम्मि।
जावत्तावत्तेहिं, पिहियं पावासवं छिद्दं।।१४१।।

जो इंद्रिय, कषाय और संज्ञाओंको जितने अंशोंमें अथवा जितने समय तक समीचीन मार्गमें नियंत्रित कर लेते हैं उनके उतने ही अंशोंमें अथवा उतने ही समय तक पापास्रवका छिद्र बंद रहता है -- पापास्रवका संवर रहता है।।१४१।।

---

१. 'अट्टरुद्दाणि' इत्यपि पाठः।

शुद्धोपयोगी जीवोंका वर्णन

जस्स ण विज्जदि रागो, दोसो मोहो व सव्वदव्वेसु।
णासवदि सुहं असुहं, समसुहदुक्खस्स भिक्खुस्स।।१४२।।

जिसके सब द्रव्योंमें न राग है, न द्वेष है, न मोह है, सुख-दुःखमें मध्यस्थ रहनेवाले उस भिक्षुके शुभ और अशुभ -- दोनों प्रकारका आस्रव नहीं होता।।१४२।।

जस्स जदा खलु पुण्णं, जोगे पावं च णत्थि विरदस्स।
संवरणं तस्स तदा, सुहासुहकदस्स कम्मस्स।।१४३।।

समस्त परद्रव्योंका त्याग करनेवाले व्रती पुरुषके जब पुण्य और पाप दोनों प्रकारके योगोंका अभाव हो जाता है तब उसके पुण्य और पाप योगके द्वारा होनेवाले कर्मोंका संवर हो जाता है।।१४३।।

संवरजोगेहिं जुदो, तवेहिं जो चिट्ठदे बहुविहेहिं।
कम्माणं णिज्जरणं, बहुगाणं कुणदि सो णियदं।।१४६।।

जो संवर और शुद्धोपयोगसे युक्त होता हुआ अनेक प्रकारके तपोंमें प्रवृत्ति करता है वह निश्चय ही बहुतसे कर्मोंकी निर्जरा करता है।।१४४।।

जो संवरेण जुत्तो, अप्पट्ठपसाधगो हि अप्पाणं।
मुणिऊण झादि णियदं, णाणं सो संधुणोदि कम्मरयं।।१४५।।

आत्माके प्रयोजनको सिद्ध करनेवाला जो पुरुष संवरसे युक्त होता हुआ आत्माको ज्ञानस्वरूप जानकर उसका ध्यान करता है वह निश्चित ही कर्मरूप धूलिको उड़ा देता है -- नष्ट कर देता है।।१४५।।

जस्स ण विज्जदि रागो, दोसो मोहो व जोगपरिकम्मो।
तस्स सुहासुहडहणो, झाणमओ जायए अगणी।।१४६।।

जिसके न राग है, न द्वेष है, न मोह है और न ही योगोंका परिणमन है उसके शुभ अशुभ कर्मोंको जलानेवाली ध्यानरूपी अग्नि उत्पन्न होती है।

कर्मबंधका कारण

जं सुहमसुहमुदिण्णं, भावं रत्तो करेदि जदि अप्पा।
सो तेण हवदि बंधो, पोग्गलकम्मेण विविहेण।।१४७।।

यह आत्मा पूर्व कर्मोदयसे होनेवाले शुभ-अशुभ परिणामोंको करता है तब अनेक पौद्गलिक कर्मोंके साथ बंधको प्राप्त होता है।।१४७।।

जोगणिमित्तं गहणं, जोगो मणवयणकायसंभूदो।
भावणिमित्तो बंधो, भावो रदिरागदोसमोहजुदो।।१४८।।

कर्मोंका ग्रहण योगोंके निमित्तसे होता है, योग मन वचन काय के व्यापारसे होते हैं, बंध भावोंके निमित्तसे होता है और भाव रति राग द्वेष तथा मोहसे युक्त होते हैं। [मन वचन और कायके व्यापारसे आत्माके प्रदेशोंमें जो परिष्पंद पैदा होता है उसे योग कहते हैं, इस योगके निमित्तसे ही कर्मोंका ग्रहण -- आस्रव होता है। रति राग द्वेष मोहसे युक्त आत्माके परिणामको भाव कहते हैं, कर्मोंका बंध इसी भावके निमित्तसे होता है।]।।१४८।।

कर्मबंधके चार प्रत्यय -- कारण

हेदू चदुव्वियप्पो, अट्ठवियप्पस्स कारणं भणिदं।
तेसिं पि य रागादी, तेसिमभावे ण बज्झंति।।१४९।।

मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग ये चार प्रकारके प्रत्यय ज्ञानावरणादि आठ कर्मोंके कारण कहे गये हैं। उन मिथ्यात्व आदिका कारण रागादि विभाव हैं। जब इनका भी अभाव हो जाता है तब कर्मोंका बंध रुक जाता है।।१४९।।

आस्रवनिरोध -- संवरका वर्णन

[१]हेदुमभावे णियमा, जायदि णाणिस्स आसवणिरोधो।
आसवभावेण विणा, जायदि कम्मस्स दु णिरोधो।।१५०।।
कम्मस्साभावेण य, सव्वण्हू सव्वलोगदरसी य।
पावदि इंदियरहिदं, अव्वाबाहं सुहमणंतं।।१५१।। जुम्मं

रागादि हेतुओंका अभाव होनेपर ज्ञानी जीवके नियमसे आस्रवका निरोध हो जाता है, आस्रवके न होनेसे कर्मोंका निरोध हो जाता है और कर्मोंका निरोध होनेसे यह जीव सर्वज्ञ तथा सर्वदर्शी बनकर अतींद्रिय, अव्याबाध और अनंत सुखको प्राप्त हो जाता है।।१५०-१५१।।

ध्यान निर्जराका कारण है

दंसणणाणसमग्गं, झाणं णो अण्णदव्वसंजुत्तं।
जायदि णिज्जरहेदू, सभावसहिदस्स साधुस्स।।१५२।।

ज्ञान और दर्शनसे संपन्न तथा अन्य द्रव्योंके संयोगसे रहित ध्यान स्वभावसहित साधुके निर्जराका कारण होता है।।१५२।।

१.'हेदु अभावे' इति ज. वृ. सम्मतः पाठः।

मोक्षका कारण

जो संवरेण जुत्तो, णिज्जरमाणोघ[१] सव्वकम्माणि।
ववगदवेदाउस्सो, [२]मुयदि भवं तेण सो मोक्खो।।१५३।।

जो जीव संवरसे युक्त होता हुआ समस्त कर्मोंकी निर्जरा करता है और वेदनीय तथा आयुकर्मको नष्ट कर नामगोत्ररूप संसार अथवा वर्तमान पर्यायका भी परित्याग करता है उसके मोक्ष होता है।।१५३।।

इसप्रकार मोक्षके अवयवभूत सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानके विषयभूत नौ पदार्थोंका व्याख्यान करनेवाला द्वितीय महाधिकार समाप्त हुआ।

***

ज्ञान, दर्शन और चारित्रका स्वरूप

जीवसहावं णाणं, अप्पडिहददंसणं अणण्णमयं।
चरियं च तेसु णियदं, अत्थित्तमणिंदियं भणियं।।१५४।।

ज्ञान और अखंडित दर्शन ये दोनों जीवके अपृथग्भूत स्वभाव हैं। इन दोनोंका जो निश्चल और निर्मल अस्तित्व है वही चारित्र कहलाता है।।१५४।।

जीवके स्वसमय और परसमय की अपेक्षा भेद

जीवो सहावणियदो, अणियदगुणपज्जओघ [३]परसमओ।
जदि कुणदि सगं समयं, पब्भस्सदि कम्मबंधादो।।१५५।।

यद्यपि यह जीव निश्चयनयसे स्वभावमें नियत है तथापि परद्रव्योंके गुण पर्यायोंमें रत होनेके कारण परसमयरूप हो रहा है। जब यह जीव स्वसमयको करता है -- परद्रव्यसे हटकर स्वस्वरूपमें रत होता है तब कर्मबंधनसे रहित होता है।।१५५।।

परसमयका लक्षण

जो परदव्वम्मि सुहं, असुहं रागेण कुणदि जदि भावं।
सो सगचरित्तभट्ठो, परचरियचरो हवदि जीवो।।१५६।।

जो जीव रागसे परद्रव्यमें शुभ अथवा अशुभ भाव करता है वह स्वचरित्रसे भ्रष्ट होकर परचरित

---

२. 'णिज्जरमाणो य'

३. 'मुअदि' इति ज. वृ. संमतः पाठः। ३. 'पज्जओ य ' ज. वृ।

-- परसमयका आचरण करनेवाला होता है।।१५६।।

आसवदि जेण पुण्णं, पावं वा अप्पणोघ भावेण।

सो तेण परचरित्तो, हवदित्ति जिणा परूवंति।।१५७।।

आत्माके जिस भावसे पुण्य और पापकर्मका आस्रव होता है, उस भावसे यह जीव परचरित -- परसमयका आचरण करनेवाला होता है।।१५७।।

स्वसमयका लक्षण

जो सव्वसंगमुक्को, णण्णमणो अप्पणं सहावेण।

जाणदि पस्सदि णियदं, सो सगचरियं चरदि जीवो।।१५८।।

जो समस्त परिग्रहसे मुक्त हो परद्रव्यसे चित्त हटाता हुआ शुद्धभावसे आत्माको जानता और देखता है वही जीव स्वचरित -- स्वसमयका आचरण करता है।।१५८।।

स्वसमयका आचरण कौन करता है

चरियं चरदि सगं सो, जो परदव्वप्पभावरहिदप्पा।

दंसणणाणवियप्पं, अवियप्पं चरदि अप्पादो।।१५९।।

जो परद्रव्यमें आत्मभावनासे रहित होकर आत्माके ज्ञानदर्शनरूप विकल्पको भी निर्विकल्प -- अभेदरूपसे अनुभव करता है वह स्वचरित -- स्वसमयका आचरण करता है।।१५९।।

व्यवहार मोक्षमार्गका वर्णन

धम्मादीसद्दहणं, सम्मत्तं णाणमंगपुव्वगदं।

चिट्ठा तवं हि चरिया, ववहारो मोक्खमग्गो त्ति।।१६०।।

धर्म आदि द्रव्योंका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है, अंग और पूर्वमें प्रवृत्त होनेवाला ज्ञान सम्यग्ज्ञान है और तप धारण करना सम्यक्चारित्र है। इन तीनोंका एक साथ मिलना व्यवहार मोक्षमार्ग है।।१६०।।

निश्चय मोक्षमार्गका वर्णन

णिच्चयणयेण भणिदो, तिहि तेहिं समाहिदो हु जो अप्पा।

ण कुणदि किंचि वि अण्णं, ण मुयदि सो मोक्खमग्गोत्ति।।१६१।।

निश्चयनयसे जो आत्मा सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रसे तन्मय हो अन्य परद्रव्यको न करता है, न छोड़ता है वही मोक्षमार्ग है ऐसा कहा गया है।।१६१।।

अभेद रत्नत्रयका वर्णन

जो चरदि णादि पिच्छदि, अप्पाणं अप्पणा अणण्णमयं।

सो चारित्तं णाणं, दंसणमिदि णिच्चिदो होदि।।१६२।।

अब तकके कथनसे यह निश्चित होता है कि जो जीव परपदार्थसे भिन्न आत्मस्वरूपमें चरण करता है, उसे ही जानता है और देखता है, वही सम्यक्चारित्र, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन है।।१६२।।

जेण विजाणदि सव्वं, पेच्छदि सो तेण सोक्खमणुहवदि।
इदि तं जाणदि भविओ, अभव्वसत्तो ण सद्दहदि।।१६३।।

'चूँकि वह पुरुष -- आत्मा समस्त वस्तुओंको जानता है और देखता है इसलिए अनाकुलतारूप अनंत सुखका अनुभव करता है' ऐसा भव्य जीव जानता है -- श्रद्धान करता है परंतु अभव्य जीव ऐसा श्रद्धान नहीं करता।।१६३।।

सम्यग्दर्शनादि ही मोक्षमार्ग हैं

दंसणणाणचरित्ताणि, मोक्खमग्गोत्ति सेविदव्वाणि।
साधूहिं इदं भणिदं, तेहिं दु बंधो व मोक्खो वा।।१६४।।

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र मोक्षका मार्ग है, इसलिए सेवन करनेयोग्य हैं -- धारण करनेयोग्य हैं ऐसा साधुपुरुषोंने कहा है। और यह भी कहा है कि उक्त तीनों यदि पराश्रित होंगे तो उनसे बंध होगा और स्वाश्रित होंगे तो मोक्ष होगा।।१६४।।

पुण्य मोक्षका साक्षात् कारण नहीं है

अण्णाणादो णाणी, जदि मण्णदि सुद्धसंपओगादो।
हवदित्ति दुक्खमोक्खं, परसमयरदो हवदि जीवो।।१६५।।

यदि कोई ज्ञानी पुरुष अज्ञानवश ऐसा माने कि शुद्धसंप्रयोग -- अर्हद्भक्ति आदिके द्वारा दुःखोंसे मोक्ष होता है तो वह परसमयरत है।।१६५।।

अरहंतसिद्धचेदिय,पवयणगणणाणभत्तिसंपण्णो।
बंधदि पुण्णं बहुसो, ण दु सो कम्मक्खयं कुणदि।।१६६।।

अरहंत, सिद्ध, चैत्य, प्रवचन, मुनिसमूह और भेदविज्ञान आदिकी भक्तिसे युक्त हुआ जीव बहुतवार पुण्यबंध करता है, परंतु कर्मोंका क्षय नहीं करता।।१६६।।

अणुमात्र भी राग स्वसमयका बाधक है

जस्स हिदयेणुमत्तं, वा परदव्वम्मि विज्जदे रागो।
सो ण विजाणदि समयं, सगस्स सव्वागमधरो वि।।१६७।।

जिसके हृदयमें परद्रव्यसंबंधी थोड़ा भी राग विद्यमान है वह समस्त शास्त्रोंका पारगामी होनेपर भी स्वकीय समयको नहीं जानता है।।१६७।।

शुद्धात्मस्वरूपके सिवाय अन्यत्र विषयोंमें चित्तका भ्रमण संवरका बाधक है

धरिदुं जस्स ण सक्कं, चित्तुब्भामं विणा दु अप्पाणं।
रोधो तस्स ण विज्झदि, सुहासुहकदस्स कम्मस्स।।१६८।।

शुद्ध आत्मस्वरूपके सिवाय अन्य विषयोंमें होनेवाला जिसका चित्तसंचार नहीं रोका जा सकता हो उसके शुभ-अशुभ भावोंसे किये हुए कर्मोंका संवर नहीं हो सकता है।।१६८।।

तम्हा णिव्वुदिकामो, णिस्संगो णिम्ममो य हविय पुणो।
सिद्धेसु कुणदि भत्तिं, णिव्वाणं तेण पप्पोदि।। १६९।।

इसलिए मोक्षाभिलाषी पुरुष निष्परिग्रह और निर्ममत्व होकर परमात्म स्वरूपमें भक्ति करता है और उससे मोक्षको भी प्राप्त होता है।।१६९।।

भक्तिरूप शुभराग मोक्षप्राप्तिका साक्षात् कारण नहीं है

सपयत्थं तित्थयरं, अभिगतबुद्धिस्स सुत्तरोइस्स।
दूरतरं णिव्वाणं, संजमतवसंपओत्तस्स।।१७०।।

जीव-अजीव आदि नव पदार्थों तथा तीर्थंकर आदि पूज्य पुरुषोंमें जिसकी भक्तिरूप बुद्धि लग रही है उसको मोक्ष बहुत दूर है, भले ही वह आगमका श्रद्धानी और संयम तथा तपश्चरणसे युक्त क्यों न हो।।१७०।।

अरहंतसिद्धचेदिय,पवयणभत्तो परेण णियमेण।
जो कुणदि तवो कम्मं, सो सुरलोगं समादियदि।।१७१।।

जो अरहंत, सिद्ध, जिनप्रतिमा और जिनशास्त्रोंका भक्त होता हुआ उत्कृष्ट संयमके साथ तपश्चरण करता है वह नियमसे देवगति ही प्राप्त करता है।।१७१।।

वीतराग आत्मा ही संसारसागरसे पार होता है

तम्हा णिव्वुदिकामो, रागं सव्वत्थ कुणदि मा किंचि।
सो तेण वीदरागो, भवियो भवसायरं तरदि।।१७२।।

इसलिए मोक्षका इच्छुक भव्य किसी भी बाह्य पदार्थमें कुछ भी राग नहीं करे, क्योंकि ऐसा करनेसे ही वह वीतराग होता हुआ संसारसमुद्रसे तर सकता है।।१७२।।

समारोप वाक्य

मग्गप्पभावणट्ठं, पवयणभत्तिप्पचोदिदेण मया।
भणियं पवयणसारं, पंचत्थियसंगहं सुत्तं।।१७३।।

जिसमें द्वादशांगका रहस्य निहित है ऐसा यह पंचास्तिकायोंका संग्रह करनेवाला संक्षिप्त शास्त्र मैंने जिनवाणीकी भक्तिसे प्रेरित होकर मोक्षमार्गकी प्रभावनाके लिए ही कहा है।।१७३।।

इस प्रकार पंचास्तिकाय ग्रंथमें नव पदार्थ तथा मोक्षमार्गके विस्तारका वर्णन करनेवाला
द्वितीय श्रुतस्कंध समाप्त हुआ।

***